आज़ादी का अमृत महोत्सव

राजभाषा मंजूषा

अंक 25 वर्ष 2022 अर्द्धवार्षिक

रजत जयंती अंक

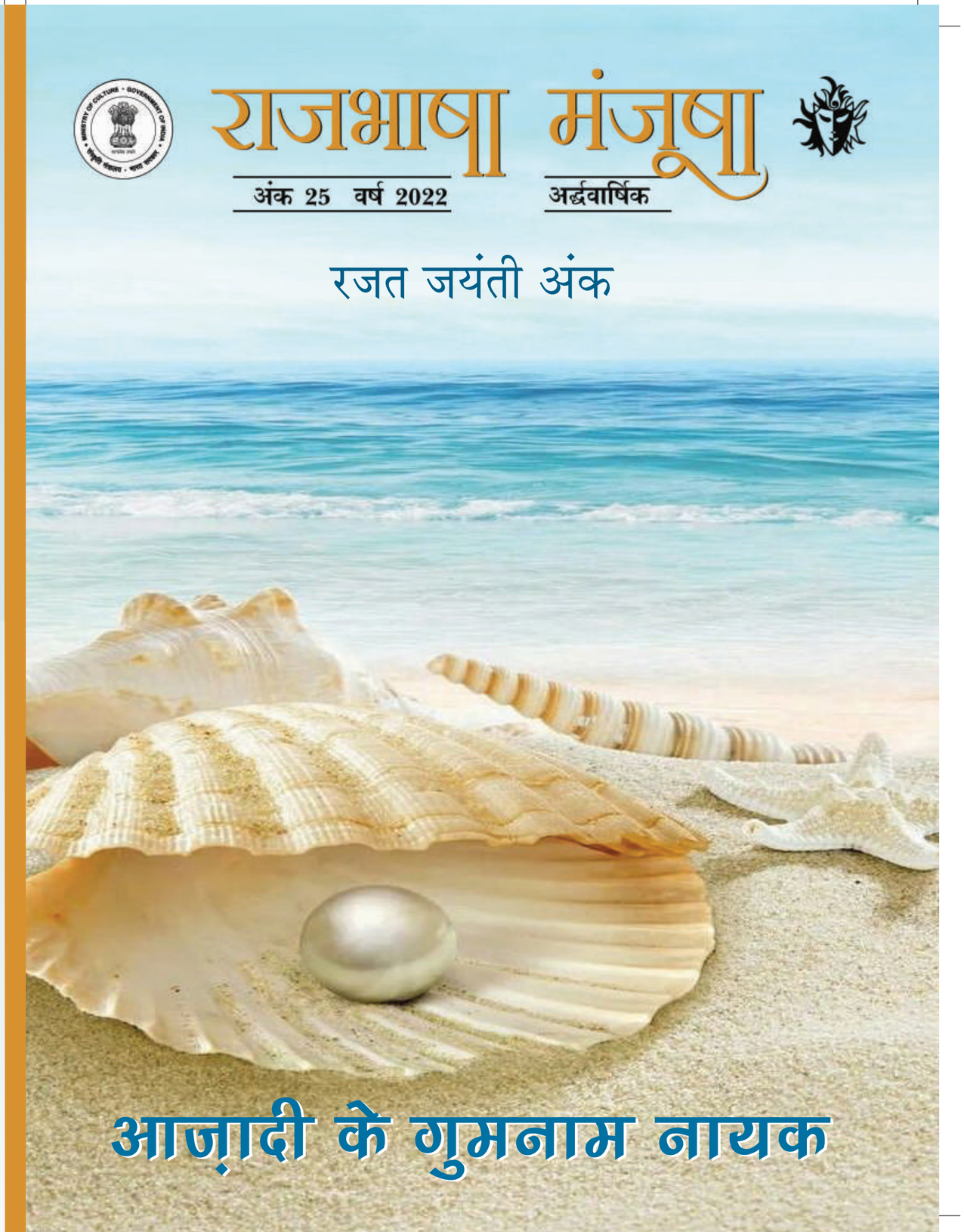

आज़ादी के गुमनाम नायक

तराना-ए-बिस्मिल

“ सरफ़रोशी की तमन्ना
अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना
बाज़ू–ए–क़ातिल में है।

वक़्त आने पर बता देंगे
तुझे, ऐ, आसमाँ
हम अभी से क्या बताएँ
क्या हमारे दिल में है। ”

– रामप्रसाद ‘बिस्मिल’

आज़ादी के गुमनाम नायक

बिरसा मुंडा

रानी अवन्ती बाई

ऊतिरोत सिंग

डॉ. एन. एस. हार्डीकर

वीर नारायण सिंह

इमानुउनल सेकरनार

अलगुमुतुक्कोन

राव तुलाराम

राजकुमारी अमृतकौर

कांजीवरम नटराजन

दुर्गाबाई देशमुख

थिल्लय्यदी वल्लीयम्मइ

श्याम लाल गुप्ता

आसफ़ अली

भीकाजी कामा

हेमू कालाणी

बेगम हज़रत महल

गुलज़ारी लाल नंन्दा

के. केलप्पन

मा. चमन लाल

अनुक्रमणिका

संपादन परामर्श मंडल
श्री परेश रावल
डॉ. (प्रो.) रमेश चंद्र गौड़

प्रधान संपादक
डॉ. ज्वाला प्रसाद

संपादक
चेतना वशिष्ठ

संपादन सहयोग
उपासना शर्मा

कार्यालय सहयोग
भूपाल सिंह, लोकेश कुमार

आकल्पन एवं कला पक्ष
चेतना वशिष्ठ, उपासना शर्मा

टाईप सैट डिज़ाईन एवं छपाई
आई. जी प्रिंटर्स प्रा. लि.
igprinter104@gmail.com

प्रकाशक
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय

संपादक कार्यालय
राजभाषा विभाग, बहावलपुर हाउस,
भगवानदास रोड,
नई दिल्ली–110001

भारत की आज़ादी के 75 साल : हिंदी ने क्या खोया क्या पाया?	– डॉ. विमलेश कांति वर्मा	7
भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के आलोक में प्रसाद के नाटक (प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर के साथ हुई परिचर्चा पर आधारित आलेख)	– डॉ. (प्रो.) मुकेश कुमार मिश्र	13
स्वतन्त्रता संग्राम में गुमनाम नायकों की भूमिका (स्वतन्त्रता संग्राम पर मंचित नाटकों पर आधारित आलेख)	– गोविन्द सिंह यादव	16
भारत रत्न लता मंगेशकर : जिन्होंने भारतीय संगीत को वैश्विक प्रतिष्ठा दी– श्रद्धाजंलि	– सुनंदा वर्मा	20
कच्ची पगडंडियों से स्वर्ण सोपानों की ओर	– चेतना वशिष्ठ	26
स्वतन्त्रता की गाथा कहता एक गुमनाम गाँव	– डॉ. चेतन आनंद	31
संगीत की दुनिया का एक गुमनाम सितारा : पं. पन्नालाल घोष	– डॉ. श्याम रस्तोगी	34
अग्नियुग के अकीर्तित विप्लवी : बारिन्दर कुमार घोष	– अरविंद शारदा	37
आज़ादी की रणभूमि का एक गुमनाम नन्हा योद्धा : बाजी राउत	– अरुण कुमार मलिक	39
स्वाधीनता आंदोलन के अकीर्तित राष्ट्रनायक : दशरथ प्रसाद द्विवेदी	– डॉ. गोपेश्वर दत्त पांडेय	42
अकीर्तित शूरवीर : अमर शहीद ठाकुर रणमत सिंह	– मनोज कुमार मिश्र	45
बुंदेला विद्रोह के गुमनाम नायक : मधुकर शाह बुंदेला	– अनामिका सागर	48
इतिहास के पन्नों में गुमनाम एक वीरा : झलकारी बाई	– देवेन्द्र देव मिर्ज़ापुरी	49
काव्य संकलन		
आज़ादी के गुमनाम नायकों का बलिदान	– सुमन वैद्य	52
अक़ीर्तित वीरांगना : मातंगिनी हाजरा	– सौमिता कुंडू	55
गुमनाम शहीद : प्रफुल्ल चंद चाकी	– राजपाल यादव	56

अनुक्रमणिका

आज़ादी के गुमनाम नायक	– योगेश भट्ट	57
स्वभूमि जयघोष	– रामअवतार मीणा	58
शौर्यवान अकीर्तित वंशजा	– कविता मिश्रा	59
वीर जाँबाज़ों को नमन	– पीयूष श्रीवास्तव	60
गुमनाम शूरवीरों की धुंधलाती स्मृतियाँ	– लोकेश कुमार	61
शुभकामनाएँ		62
श्रद्धांजलि		63
गतिविधियाँ		
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की गतिविधियाँ		65
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के केन्द्रों की गतिविधियाँ		67
राजभाषा गतिविधियाँ		71

सर्वाधिकार सुरक्षित :

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति–नीति या विचारों से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है और न ही वे उसके लिए ज़िम्मेदार हैं। यह अंक मार्च 2022 का है।

'राजभाषा मंजूषा' राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की हिन्दी की गृह पत्रिका है।

स्रोत एवं साभार :

stampdigest.in, newindianexpress.com, amritmahotsav.nic.in, in.pinterest.com, entranceindia.com.htm, amritmahotsav.nic.in/unsung_heroes.htm, en.m.wikipediaa.org/wiki/barinda kumar ghosh, me.scientificworld.in/2021/08/ajijan_bai_ki_kahani.html?m=, koyapunemgondwana.com/jhalakari_bai/, lifeispreciousnotrance.blogspot.com, www.google.co.in, M.facebook.com, Tiranga, Celebrations of Indian Flag, Mahisandesh (Hindi Visheshank)

शुभकामना संदेश

अपने सभी प्रबुद्ध पाठकों का सादर अभिनंदन करते हुए मैं आपको आज़ादी के 75वें वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ। हमारी भारत भूमि ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत कई उतार–चढ़ाव देखे पर कच्चे–पक्के रास्तों पर अदम्य साहस से चलते हुए और अपना मार्ग प्रशस्त करते हुए आज हम आसमान की बुलंदियों को छूने की इच्छा रखते हैं। भारतीय स्वतन्त्रता के संघर्ष का अध्याय 1857 से सक्रिय रूप से आरम्भ होकर लगभग सौ वर्षों की लंबी और कठोरतम् परिस्थितियों से गुज़रते हुए अंततः वर्ष 1947 में स्वतन्त्रता की पावन भोर का साक्षी बना। भारतवर्ष के स्वतन्त्रता संग्राम में अनेकानेक भारतीयों ने अपनी जाति, धर्म और भाषाई विभिन्नता को दरकिनार कर अपनी मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। ऐसे न जाने कितने वीर योद्धा हुए जिन्होंने अपने देश को परतन्त्रता की ज़ंजीरों से छुड़ाने के लिए हँसते–हँसते अपनी मातृभूमि के लिए आहुतियाँ दे दीं। उन महान स्वतन्त्रता सेनानियों की सूची में ऐसे योद्धाओं के नाम तो हमें स्मृत रहे, और इनके विषय में हम वर्षों से पढ़ते–सुनते रहे हैं। परन्तु उन अन्य महान जाँबाज़ वीरों का क्या हुआ जिनके नाम को प्रसिद्ध नामों ने आच्छादित कर लिया। ऐसे वीरों की कीर्ति शायद कहीं विस्मृत होकर रह गई।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय उन सभी अदम्य साहसी रणबाँकुरों को शत्–शत् नमन करता है। हमारी गृह पत्रिका का इस बार का अंक कुछ ऐसे ही अज्ञात सूरमाओं को सलामी देता है जिनके नाम भले ही किसी संग्रह–तालिका में सूचीबद्ध न किए गए हों परन्तु उनकी शौर्य गाथा सदा ही भारत माता के मस्तक पटल पर गौरव से अंकित रहेगी। यह देश उनके बलिदान के समक्ष सदैव नतमस्तक रहेगा।

निश्चय ही, इस प्रकार का अनूठा संकलन तैयार करना किसी चुनौती से कम नहीं था किन्तु हमने अपने प्रयास को बनाए रखा और उनमें से कुछ की कीर्ति–गाथा को आपके सम्मुख प्रस्तुत करने का किंचित प्रयास किया है। आशा है आप हमारे इस प्रयास को अवश्य पसन्द करेंगे। मैं अपने संपूर्ण संपादन मंडल द्वारा किए गए इस अनुकरणीय कार्य के लिए धन्यवाद अर्पित करता हूँ। आप सभी को मेरी सादर शुभकामनाएँ हृदय से संप्रेषित हैं।

श्री परेश रावल
अध्यक्ष

संदेश

अपने राष्ट्र के प्रति उसके देशवासियों का सम्मान और समर्पण होना अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य भी है। सभी देशवासियों को अपनी मातृभूमि की सुरक्षा के लिए वचनबद्ध रहना चाहिए। हम भारतवासी संपूर्ण जगत में अपने देशप्रेम के लिए ही नहीं, बल्कि अपनी निर्भीक देशभक्ति के लिए भी जाने जाते रहे हैं। शायद ही कोई ऐसा देशवासी हो जिसका मन देशभक्ति से ओत–प्रोत गीतों को सुनकर भीगा न हो। पूरा विश्व इस कथन से शत–प्रतिशत सहमत है कि हम भारतवासियों ने अपनी स्वतन्त्रता को हासिल करने के लिए काँटों भरे रास्तों पर चलकर हँसते–हँसते आहुतियाँ दी हैं।

हमारे देश के स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों ने अनेकों बार मातृभूमि के चरणों में अपने प्राणों को समर्पित किया है। आज भी उन वीर योद्धाओं के यातनाओं भरे कठोर संघर्ष को याद कर आँखें नम हो जाती हैं। हम सभी उनके त्याग और बलिदान के लिए सदा ऋणी रहेंगे। साथ ही उन गुमनाम नायकों को स्मरण करना भी हमारा कर्तव्य हो जाता है जिनके बलिदान ने स्वभूमि का अविस्मरणीय अभिषेक किया है। उनके निश्छल देशप्रेम से यह मातृभूमि आज भी अलंकृत है। कितने ही भारतवासियों ने अपने परिवार, अपने समाज से ऊपर उठकर स्वतन्त्रता की प्राप्ति हेतु अपने देश, अपनी जननी जन्मभूमि को अपने रक्त से अभिसिंचित किया है। 'भारत की आज़ादी का अमृत महोत्सव' पर प्रस्तुत विद्यालय की गृह–पत्रिका का रजत जयन्ती अंक इन्हीं गुमनाम नायकों को विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में सादर समर्पित है।

आप सभी सुबुद्ध एवं विवेकी पाठकगणों के लिए रचित यह अंक हम सभी भारतीयों के उस संकल्प को दोहराता है जो यह घोष करता है कि–

''मातृभूमि पर जान लुटाने
अनगिनत वीर पधारे थे
कुछ ऐसे भी हुए सूरमा
चुपचाप जिन्होंने स्वअर्पित हो
विजय मार्ग संवारे थे''

मेरी ओर से सम्पूर्ण संपादन मंडल को उनके इस विशिष्ट प्रयास हेतु हार्दिक अभिनंदन।

प्रोफ़ेसर (डॉ.) रमेश चन्द्र गौड़
निदेशक

अपनी बात

वर्ष 1947 में भारतवर्ष को स्वतंत्रता मिली थी इसलिए यह दिन हम सभी भारतीयों के दिल में विशेष महत्व रखता है। इस पावन पर्व पर प्रत्येक भारतवासी न केवल स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है बल्कि इस देश का वासी होने पर निश्चित ही स्वयं को धन्य समझता है। ये भूमि असंख्य वीरों और वीराँगनाओं की कर्मभूमि रही है। सदियों से देश का इतिहास ऐसे ही अनेक क्रांतिकारी तथा शहीदों के नामों व कामों का पयोनिधि रहा है। वर्ष 2021–22 भारतीय स्वतंत्रता के 75वें वर्ष का जयघोष करते हुए आज़ादी के अमृत महोत्सव के रूप में मनाया जा रहा है। स्वदेशी स्वतंत्रता के ऐतिहासिक ग्रंथ में सैकड़ों पृष्ठ जाने–माने नामों से अलंकृत रहे हैं परन्तु मुट्ठी भर एकांकियाँ आज़ादी के गुमनाम नायकों का नाम धीमे–धीमे गुनगुनाती रहीं।

प्रस्तुत अंक में हमने अपने इस छोटे से प्रयास के माध्यम से उन्हीं एकांकियों में छुपे हुए अकीर्तित महान नायकों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। एक ओर जहाँ हम बघेलखण्ड के क्रांतिकारी ठाकुर रणमत सिंह के बारे में पढ़ते हैं जिनको कि रीवा के राजा ने धोखे से स्वागतार्थ बुलाकर अंग्रेजों के हवाले कर दिया और फिर उन्हें फाँसी दे दी गई, वहीं दूसरी तरफ़ हमें बंगाल प्रांत में क्रांतिकारी विचारधारा की मशाल को प्रज्जवलित करने वाले बारिन्द्र कुमार घोष के बारे में जानकारी मिलती है, जिनको कि किंग्स फोर्ड हत्याकांड के सिलसिले में गिरफ़्तार किया गया और बाद में काला पानी की सज़ा के लिए बारह वर्षों की लंबी असहनीय अवधि के लिए सैल्युलर जेल में अंडमान भेज दिया गया था। स्वतंत्रता की वेदी पर न्यौछावर होने वाले वीरों में प्रफुल्ल चंद चाकी का नाम भी सदैव अमर रहेगा, जिन्होंने केवल बीस वर्ष की युवा आयु में ही खुद पर गोली चलाकर अपने स्वाभिमान का ऐलान किया और अँग्रेज़ी हुकूमत के हाथों होने वाली अपनी गिरफ़्तारी को नाकाम कर दिया। राजभाषा मंजूषा की ओर से उन सभी महान गुमनाम नायकों को शत्–शत् नमन जिन्होंने मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया। यशस्वी एवं आलोकित मातृभूमि को समर्पित श्लोक –

मित्राणि धन धान्यानि प्रजानां सम्मतानिव।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

(मित्र, धन, धान्य आदि का संसार में बहुत अधिक सम्मान है किन्तु माता और मातृभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊपर है।)

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की गृह पत्रिका का वर्तमान अंक आप सभी सुधी पाठकों के समक्ष अकीर्तित नायकों की गाथाओं को अनावृत करने का एक लघुतम् प्रयास है। पत्रिका की संरचना के लिए संपादन मंडल के प्रत्येक सदस्य को धन्यवाद, बधाई और शुभकामनाएँ।

डॉ. ज्वाला प्रसाद
कुलसचिव

संपादकीय

हमारे देश को आज़ाद हुए 75 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। इस अवसर पर देश भर में आज़ादी का अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है। यह तो हम सभी जानते हैं कि हमारा देश वर्ष 1947 में अँग्रेज़ों की गुलामी की बेड़ियों से आज़ाद हुआ, पर क्या हम यह जानते हैं कि जिस आज़ाद देश में हम आज स्वच्छंद होकर विचर रहे हैं, इस आज़ादी के लिए हमारे देश के असंख्य ऐसे वीरों और वीराओं ने अपने प्राणों की आहुति दी थी जिनके नाम इतिहास के पन्नों में कहीं गुम होकर रह गए हैं। 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' के माध्यम से इतिहास के इन अधखुले पन्नों को अनावृत्त कर ऐसे ही अनाम वीर और वीराओं की अनकही गाथा को देशवासियों के समक्ष लाने का भी प्रयास किया जा रहा है।

देर से ही सही पर अब समय आया है कि धीमे–धीमे स्वर में गुनगुनाए गए उन गुमनामों को ओजपूर्ण उच्च स्वर दिया जाए। प्रस्तुत अंक ऐसे अकीर्तित महान नायकों के बलिदानों के अधखुले पन्नों को अनावृत्त कर आप सुधी पाठकों के समक्ष रखने का एक विनम्र प्रयास है। भाषा के संदर्भ में मनन करता हुआ डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा का आलेख, 'भारत की आज़ादी के 75 साल : हिन्दी ने क्या खोया क्या पाया?' वास्तव में हमें यह सोचने पर विवश करता है कि पाने के साथ–साथ हमसे इन 75 वर्षों में क्या कुछ खो भी गया है।

एक ओर देश के वीर सपूत देश की स्वतंत्रता के लिए अपनी जान की बाजी लगाए हुए थे वहीं दूसरी ओर क़लम के सेनानी भी लेखनी के माध्यम से देशभक्ति की लौ में घी डालकर उस ज्वाला को प्रचंड करने में अपनी अहम भूमिका निभा रहे थे। एन. एस. डी. के पूर्व निदेशक एवं जाने–माने व्यक्तित्व प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर के साथ 'स्वतन्त्रता आंदोलन के आलोक में प्रसाद के नाटक' विषय पर डॉ. मुकेश मिश्र की परिचर्चा पर आधारित आलेख के माध्यम से यह कथ्य पूर्णतः परिभाषित होता है।

प्रस्तुत अंक में सुनन्दा वर्मा के आलेख के माध्यम से हमने हमारे देश की कोकिला, भारत रत्न स्व. सुश्री लता मंगेशकर, जिनके गीत हमें रूहानी एहसास देते हैं, को श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं। 'कच्ची पगडंडियों से स्वर्ण सोपानो की ओर' आलेख हर उस व्यक्ति को सपने देखने का हक़ देता है जो जीवन में कुछ कर गुज़रने की चाह रखते हैं।

आज़ादी के गुमनाम नायकों पर आलेखों के साथ प्रस्तुत अंक में गुमनाम नायकों पर लिखी और साथ ही कुछ देश भक्ति से ओत–प्रोत कविताओं का भी अनूठा समावेश है।

आज़ादी के लिए इन शूरवीरों की गाथा को मात्र कुछ पन्नों में समेटना संभव नहीं है। पत्रिका के विषय को सार्थक बनाने में आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से जो हमें सहयोग दिया है, इसके लिए हम अत्यंत आभारी हैं।

चेतना वशिष्ठ
सहायक निदेशक (रा.भा.)

भारत की आज़ादी के 75 साल : हिन्दी ने क्या खोया क्या पाया ?

✍ डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा

शिक्षक ने छात्र से सवाल पूछा कि आदमी अमीर कैसे बनता है ? छात्र कक्षा का सबसे मेधावी छात्र था। उसने तत्काल उत्तर दिया, गुरु जी, ख़ूब मेहनत करके धन कमाने से उत्तर तो सही था पर गुरु जी तो कुछ और समझाना चाहते थे। गुरु जी बोले तुम्हारा उत्तर सही तो है पर है अधूरा। केवल धन कमाने से आदमी अमीर नहीं बनता, धन बचाने से आदमी अमीर बनता है। तुमने कितना कमाया यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि तुमने बचाया कितना ? जितना तुम्हारे पास बचेगा उससे आँका जाएगा कि तुम कितने अमीर हो। छात्र को बात समझ में आ गई। पर बहुत से छात्र गुरु जी की बात समझ नहीं पाए और चुप रहे। गुरु जी समझ गए कि अभी भी कक्षा के सारे छात्र बात नहीं समझ पाए हैं। उन्होंने दूसरा उदाहरण देकर फिर समझाना चाहा। गुरु जी छात्रों को गणित पढ़ाते थे। उन्होंने दूसरा उदाहरण दिया।

एक टंकी एक नल से दो घंटे में भरती है और दो नलों से आधे घंटे में ख़ाली हो जाती है। तो बताओ यदि दोनों नल खुले हों तो टंकी कितनी देर में भरेगी। सब छात्र बोले यदि सब नल खुले होंगे तो टंकी हमेशा ख़ाली ही रहेगी। उत्तर सही था। गुरुजी ने सिद्धांत बताया कि यदि आमदनी से ख़र्च अधिक होगा तो, बचत से अधिक, ख़र्च होगा और तिजोरी हमेशा ख़ाली ही रहेगी। अमीर या धनी बनने का एक ही मार्ग है कि आय अधिक और व्यय कम, तभी तिजोरी में धन होगा। छात्रों को अब अमीरी का रहस्य समझ आ गया।

अब गुरु जी ने फिर प्रश्न किया कि देश को आज़ाद हुए 74 साल पूरे हो गए। देश 1947 में आज़ाद हुआ था और आज वर्ष 2021 चल रहा है अर्थात 75 वाँ वर्ष लग गया। हम 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' मना रहे हैं। यह बताओ की इन 75 वर्षों में भारत की भाषा हिंदी अमीर हुई या ग़रीब हुई? सभी छात्र मौन रहे। प्रश्न बहुत कठिन था इसलिए उत्तर भी आसान नहीं। गुरु जी के प्रश्न का सीधा सादा अर्थ यह था कि स्वतन्त्रता के इन 75 वर्षों में हिन्दी ने क्या खोया और क्या पाया ? हिंदी अमीर हुई या ग़रीब हुई ?

गुरु जी का छात्रों से पूछा गया यह प्रश्न भारतीयों के दिल में ही नहीं, भारत को दिल से चाहने वाले सभी देश वासियों के मन में उठ रहा है। चेक हिंदी विद्वान ओदोलेन स्मेकल, जो चेकोस्लोवाकिया के प्राग विश्व विद्यालय में हिंदी के प्रोफ़ेसर तथा बाद में भारत में चेक दूतावास के राजदूत भी बने, उनके मन में भी यह प्रश्न उमड़ता घुमड़ता रहा। उन्होंने अपनी एक कविता में कहा भी कि मेरी हिंदी और ग़रीब हो गई। प्रोफ़ेसर ओदोलेन स्मेकल की इस धारणा को समझने के लिए आवश्यक है

कि हम विचार करें कि आज़ाद भारत के इन 75 वर्षों में हिन्दी को क्या मिला और हिन्दी ने क्या खोया ? आज के सन्दर्भ में और स्वतन्त्रता की अमृत जयन्ती के अवसर पर यह विचारमंथन सामयिक भी है और आवश्यक भी लगता है।

वर्ष 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ, वर्ष 1950 में भारत गणतन्त्र घोषित हुआ। गाँधी जी ने हिन्दी को स्वतन्त्रता आन्दोलन की भाषा के रूप में चुना था और कहा था देश राष्ट्रभाषा के बिना गूँगा है।

12–13–14 सितम्बर 1949 को भारत के प्रथम राष्ट्रपति देश रत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई भारतीय संविधान सभा में देश भर के सभी दिग्गज नेताओं ने सर्वसम्मति से देश की चौदह भाषाओं में से हिन्दी को राजभाषा का गौरव पूर्ण पद दिया था और यह सोचा था कि 15 वर्ष बाद हिन्दी देश की राजभाषा होगी और अँग्रेज़ी की वर्चस्विता समाप्त हो जाएगी। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव बंगाल के रबीन्द्र नाथ ठाकुर, शारदा चरण मित्र, क्षिति मोहन सेन, गुजरात के स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल, महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, पंजाब के लाला लाजपत राय, दक्षिण के श्री जी. रेड्डी, प्रोफ़. नागप्पा, चंद्रशेखरन् नायर सभी ने एक स्वर से हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने की बात कही थी, जीवन भर प्रयत्न भी किया लेकिन अभी तक ऐसा हो न सका।

भारत के स्वतन्त्र होने तक देश में हिन्दी स्वाभिमान का प्रतीक थी। हम अपने को भारतीय, अपनी भाषा हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहकर, सबके बीच हिन्दी में बात कर स्वाभिमान का अनुभव करते थे। स्नातकोत्तर स्तर पर विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ने आने वाले छात्र गर्व का अनुभव करते थे और आज विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थी वे हैं जो अन्य किसी विषय में प्रवेश लेने के जब योग्य नहीं रहते हैं, हिन्दी विषय में एम.ए. करने

की बात सोचते हैं। हिन्दी आज उनका स्वाभिमान नहीं, हिन्दी उनकी मजबूरी बन गई है।

स्वतन्त्रता से पहले जिस हिन्दी को देश में चतुर्दिक समर्थन प्राप्त था, वहीं अब हिन्दी का चतुर्दिक विरोध दिखता है। हिन्दी के पूर्ण राजभाषा बनने की बात थी। जैसा भारतीय संविधान सभा ने निर्णय लिया था कि 1965 के बाद हिन्दी भारत की पूर्ण राजभाषा बन जाएगी, वह स्वतन्त्रता के 15 वर्ष बाद तो दूर, 75 सालों में भी नहीं हो पायी।

हिन्दी सेवी संस्थाएँ स्वतन्त्रता पूर्व तन–मन से हिन्दी के विकास के लिए प्रतिबद्ध और कटिबद्ध थीं – यथा हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी; और ऐसी कितनी ही हिन्दी सेवी संस्थाएँ जो भारत के विभिन्न प्रान्तों में बड़े उत्साह से बनी थीं, वे आज निष्क्रिय हो रही हैं। अब उनके पास अध्ययन–अनुसंधान की कोई व्यवस्था नहीं है। शासकीय अनुदान के अभाव में वे अब केवल ऐतिहासिक उल्लेख के लिए महत्वपूर्ण रह गई हैं। हिन्दी शब्द सागर, हिन्दी विश्वकोश, मानक हिन्दी कोश, पाण्डुलिपि संग्रह, हिन्दी गौरव ग्रन्थ और शोध पत्रिकाओं के सम्पादन और प्रकाशन के लिए जो संस्थाएँ देश में जानी जाती थीं पर अनुदान की अभाव में ये भी बंद हो रही हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि 75 वर्षों में भारत की जनसंख्या में तो बहुत वृद्धि हुई है और इसके प्रभावशाली आँकड़े जनसंख्या गणना में आप देखेंगे। पर हिन्दी भाषा–भाषियों की संख्या हर दस वर्षीय आँकड़ों में बढ़ती नहीं घटती दिखाई पड़ेगी। 1950 में भारत गणतन्त्र बना। यदि वर्ष 1961 के जनसंख्या गणना के आँकड़े आप देखें और आगे के अब तक के जनसंख्या आँकड़े मिलाएँ और आप हिन्दी की स्थिति देखें और उनका विश्लेषण करें तो आपको आश्चर्य होगा। हिंदी भाषा भाषियों की संख्या पहले से आज सरकारी आँकड़ों में कितनी कम हो गई है यह जानकर आपको विस्मय होगा। जब हिन्दी भाषियों की संख्या कम होती जाएगी तो एक दिन ऐसा भी आ सकता है, या कहिए कुछ ही दशकों में आने वाला है, कि हिंदी की सरकारी आँकड़ों के अनुसार गणना देश की गौण भाषाओं में होने लगे।

भाषावैज्ञानिकों की दृष्टि में 'हिन्दी' भाषा समष्टि का नाम है। हिन्दी की 17 प्रधान उपभाषाएँ बताई गई हैं जिन्हें सुविधा की दृष्टि से पाँच वर्गों में रखा गया है। 1. राजस्थानी – मारवाड़ी, मेवाड़ी, जयपुरी और मालवी, 2. पूर्वी हिन्दी–अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी 3. पश्चिमी हिन्दी – खड़ी बोली, ब्रज, बुन्देली, कन्नौजी, हरियाणवी 4. बिहारी – मैथिली, मगही और भोजपुरी 5. पहाड़ी – गढ़वाली और कुमाऊँनी की गणना होती है और जिसके कारण राजस्थान की मीराबाई, नरपति नाल्ह, चंद बरदाई, अवधी के जायसी और तुलसी, ब्रज के सूरदास, नन्ददास, मतिराम, पद्माकर, केशवदास, मैथिली के विद्यापति और भिखारी ठाकुर तथा खड़ी बोली के प्रेमचंद, जय शंकर प्रसाद, निराला और बोलियों के लोकसाहित्य, हिन्दी पाठ्यक्रम के अंग हुआ करते थे, पर आज धीरे–धीरे विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्यक्रम खड़ी बोली साहित्य तक सीमित होते जा रहे हैं। आप जानते हैं, ऐसा क्यों हो रहा है? क्योंकि हिन्दी की बोलियों को हिन्दी से धीरे–धीरे जनसंख्या आँकड़ों में अलग करके उल्लिखित किया जा रहा है। मुझे लगता है ब्रज, अवधी और अन्य बोलियों की अकादमियों का जब शिलान्यास होगा तब हिन्दी की परिधि से मीराबाई, तुलसी, जायसी, सूर, विद्यापति इत्यादि हिन्दी के पाठ्यक्रम से हटेंगे और केवल खड़ी बोली का साहित्य हिन्दी साहित्य कहा जाएगा।

शिक्षा में हिन्दी का माध्यम प्राथमिक स्तर से उच्चतम्

स्तर पर होने का सपना भारत के स्वतन्त्रता सेनानियों ने देखा था। पर देश में आज बहुत कम अच्छे प्राथमिक विद्यालय हैं जहाँ शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी न हो। अवधेय है कि विश्व के सभी विकसित देशों में शिक्षा का माध्यम प्राथमिक और उच्च स्तर पर देश की भाषा ही होता है – स्वदेशियों और विदेशियों दोनों के लिए, और इसमें अपवाद की कोई व्यवस्था नहीं है। उच्च स्तर पर शिक्षा का माध्यम हिन्दी बने इसके लिए भारत सरकार ने वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग बनाया, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय बनाया, हिन्दी में तकनीकी साहित्य और वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित रूप में उपलब्ध हो सके इसके लिए केन्द्रीय माध्यम कार्यान्वयन बोर्ड भी बना, सभी संस्थाएं कार्यरत भी हैं, पर क्या कहीं हिन्दी IIM, AIIMS, IIT व अन्य शिक्षा संस्थानों में शिक्षा का माध्यम इन 75 वर्षों में बन सकी ?

आज 75 वर्षों बाद प्रयोग के स्तर पर हिन्दी के स्वरूप पर आप ध्यान दें तो आप देखेंगे कि देश में हिन्दी बोलने वालों की संख्या तो बढ़ती दिखती है, पर हिन्दी की भाषिक संरचना अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ियत से इतनी आक्रांत है कि वाक्य में अँग्रेज़ी शब्दों की क्रियारूप में गहनता से, बिना अँग्रेज़ी ज्ञान के, वाक्य का अर्थ ही आज नहीं समझ आता। हिन्दी को समझने के लिए अँग्रेज़ी का ज्ञान आवश्यक लगता है। कथन की स्पष्टता के लिए दो उदाहरण देना चाहता हूँ।

(क) मोहन और शीला में मिसअंडरस्टैंडिंग इतनी बढ़ गई है कि अब कॉम्प्रोमाईज़ पॉसिबुल नहीं है।

(ख) स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया में फ़िक्स्ड डिपॉज़िट पर सीनियर सिटीज़न्स का मैक्सिमम रेट ऑफ़ इंटरेस्ट क्या है ?

ऐसी ही हिन्दी आपको पोस्टर में आज दिखेगी, रेडियो और टेलीविज़न पर आप सुन और देख भी सकते हैं। शिक्षित समाज के पारस्परिक बोलचाल में ऐसी हिन्दी आपको सामान्यतः सुनने को मिलेगी। श्री रामचंद्र वर्मा की अच्छी हिन्दी और प्रोफ़. हरदेव बाहरी की शुद्ध हिन्दी सुनने को आप तरस जाएँगे। ये हैं स्वतन्त्र भारत की 75 साल की हिन्दी की उपलब्धियाँ। भारत की स्वाधीनता के बाद हिन्दी के विकास के स्वरूप का यदि आप विश्लेषण करें तो प्रभुत्व अँग्रेज़ी का बढ़ता दिखेगा, हिन्दी का कम है।

भाषा और लिपि का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध कहा जाता है। सच तो यह है कि भाषा पूर्ण शुद्धता के साथ अपनी लिपि में ही पढ़ी जा सकती है। आचार्य विनोबा भावे जीवन भर देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और उसके महत्व को समझाते रहे, पर इन 75 वर्षों में रोमन लिपि में हिन्दी पढ़ने और समझने वाले बढ़ते गए और अब अभिजात्य वर्ग के भारतीय इस बात में गौरव समझते हैं कि वे हिन्दी रोमन लिपि में लिखते और पढ़ते हैं। बॉलीवुड की हिन्दी फ़िल्मों के लोकप्रिय अभिनेता और अभिनेत्रियाँ अपने हिन्दी संवादों का पूर्ण अभ्यास रोमन लिपि में लिखी हिन्दी को पढ़कर ही करते हैं।

आइए अब थोड़ा हिन्दी के वैश्विक परिप्रेक्ष्य की स्थिति पर विचार कर लें। भारत, हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने के लिए कई दशकों से प्रयत्नशील है। विदेशों में 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' का चार दशकों से आयोजन, 'विश्व हिंदी सम्मान' का वितरण उसी उद्देश्य के लिए किया जाने वाला राष्ट्रीय उपक्रम है। विदेश में सरकार के प्रयत्न और अनुदान से विश्व के अनेक देशों में हिन्दी पीठ की स्थापना हुई है और हिन्दी के पाठ्यक्रम चल रहे हैं। छात्रों की निरन्तर घटती संख्या से विदेशी विश्वविद्यालयों में जो पाठ्यक्रम कभी अच्छे चल रहे होते थे वे धीरे–धीरे बंद होते जा रहे हैं। भारत

से भेजे गए अध्यापक गण भाषा नहीं पढ़ा पाते। भाषा शिक्षण की नवीनतम् पद्धतियों से हमारे चयनित शिक्षक नितांत अपरिचित हैं, इसलिए वे भाषा के स्थान पर साहित्य पढ़ाना चाहते हैं, जबकि विदेशी विद्यार्थी साहित्य नहीं वार्तालाप की हिन्दी सीखना चाहते हैं, जो उनके लिए आजीविका की दृष्टि से उपयोगी है। परिणामतः हिन्दी कक्षाएँ जब छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पातीं तो विद्यार्थी निराश होकर कक्षा में आना बंद कर देते हैं और चूँकि ये पाठ्यक्रम सामान्यतः स्ववित्त पोषित होते हैं, इसलिए वे धीरे–धीरे बंद होते जाते हैं। इसके मूल कारण क्या हैं ? आज विश्वविद्यालय स्तर पर भाषा विभागों में हम भाषा अध्ययन पर बल न देकर साहित्य शिक्षण पर बल दे रहे हैं। हम यह आज भूल गए हैं कि भाषा और साहित्य दो अलग अलग अनुशासन हैं। भाषा का अनुशासन पक्ष बहुत व्यापक है। हिन्दी के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकास और प्रसार की बात जब होती है तो उसका अर्थ हिन्दी भाषा का प्रसार है न कि हिन्दी साहित्य का प्रसार। साहित्य, भाषा की उच्चतम् भावाभिव्यक्ति है। जब तक भाषा पर अच्छा अधिकार नहीं, उत्कृष्ट साहित्य सृजन या साहित्य की समझ संभव ही नहीं।

जिन विदेशी विद्यार्थियों ने श्रम कर हिन्दी भाषा पढ़ी और जो स्वप्न देखते हैं कि हिन्दी सीखकर, भारतीय दूतावास / उच्चायोग में, जब स्थानीय अधिकारियों की नियुक्ति की बात होगी, तो हिन्दी ज्ञान के कारण उन्हें प्राथमिकता मिलेगी, उनके स्वप्नों पर तब तुषारापात होता है जब दूतावास हिन्दी विशेषज्ञ के स्थान पर अँग्रेज़ी स्नातक खोजता है। अगर भारतीय दूतावासों में कार्यरत् हिन्दी जानने वाले विदेशियों के सही आँकड़े तैयार किए जाएँ तो विदेश में हिन्दी का भविष्य क्या है उसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। अगर विदेश में हमें हिन्दी को बचाना और बढ़ाना है तो जो देश हिन्दी चाहते हैं हमें उनकी ओर उन्मुख होना होगा। ये देश हैं मॉरीशस, फ़ीज़ी, सूरीनाम, त्रिनिदाद और टोबागो, गुयाना और दक्षिण अफ़्रीका आदि, जो हिन्दी को बचाने और बढ़ाने के लिए प्राण पण से लगे हुए हैं। हमारी विडम्बना –'यां सततां मयि सा विरक्ता' की सी है। जिसे हम चाहते हैं वह हमें नहीं चाहता और जो हमें चाहता है उसे हम नहीं चाहते। यदि हम उसे चाहें जो हमें चाहता है तो हिन्दी की विदेशों में प्रतिष्ठा बढ़ेगी और हिन्दी का विस्तार होगा। ये देश हिन्दी में आजीविका नहीं ढूँढते वे हिन्दी को अपनी अस्मिता मानते हैं, इसलिए अपने–अपने देशों में हिन्दी के लिए कार्य कर रहे हैं।

आज़ादी के 75 वर्षों में हिन्दी के कृष्ण पक्ष की जो संक्षिप्त चर्चा मैंने की, वह आपके मन में अनेक प्रश्नों को जन्म देगी, आप निश्चय ही उसकी तह में जाना चाहेंगे।

हिन्दी का एक शुक्ल पक्ष भी है जिसकी चर्चा भी आवश्यक है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डीफ़िल. की उपाधि लेकर वर्ष 1965 के जनवरी माह में एक प्राध्यापक के रूप में मैंने जब दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी प्राध्यापक का दायित्व सम्भाला, यह वह समय था जब संविधान सभा के निर्णय के अनुसार हिन्दी को पूर्ण राजभाषा का गौरव मिलने की बात सोची गई थी। 1965 से 2021 के इन 56 वर्षों में मैंने यह भी देखा कि जन समाज की हिन्दी के प्रति रुचि बढ़ी है, यही कारण है कि वर्ष 1965 में रेडियो और टेलीविज़न पर हिंदी समाचार बहुत कम सुनने और देखने को मिलते थे, और मजबूरी में अँग्रेज़ी समाचार ही सुनने पड़ते थे, पर आज हिन्दी समाचार चैनलों की भरमार है। ऐसा क्यों है, यह हम सभी जानते हैं, अँग्रेज़ी समाचार पत्र और हिन्दी समाचार पत्र तथा अन्य पत्र पत्रिकाओं के आँकड़े आप उठा कर देखें और हिन्दी तथा अँग्रेज़ी पत्रों की मुद्रित प्रतियों की तुलना करें स्थिति स्वतः स्पष्ट हो जाएगी।

ऐसा क्यों है ? अँग्रेज़ी पत्र और पत्रिकाएँ जो निकल भी रही हैं उनकी संजीवनी विज्ञापन है। अँग्रेज़ी अभिजात्य वर्ग की भाषा है जबकि हिन्दी जनवर्ग की भाषा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अभिजात्य का अर्थ 'भद्रलोक' नहीं 'धन कुबेर' है। जनवर्ग पढ़ने के लिए हिन्दी अख़बार ख़रीदता है और नौकरी खोजने के लिए अँग्रेज़ी अख़बार पढ़ता है। अँग्रेजी अख़बार पढ़ना उसकी विवशता है, अँग्रेज़ी से उसे कोई लगाव नहीं है। आपने क्या कभी किसी दुकान पर अंग्रेज़ी अखबार रखा देखा है, पर हर दुकान वाला हिन्दी अख़बार पढ़ता है समाचार जानने के लिए। अँग्रेज़ी अखबार के समाचारों में उसकी कोई रुचि नहीं है। यदि हिन्दी समाचार पत्रों को अँग्रेज़ी पत्रों वाले विज्ञापन मिलने लगें, तो अँग्रेज़ी अख़बार दिवालिया होने की स्थिति में पहुँच जाएँगे। पर यह हो कैसे– अँग्रेज़ी के विज्ञापन देने वाले, नौकरी देने वाले (जो संख्या में बहुत कम है) अँग्रेज़ी के पक्षधर हैं और नौकरी लेने वाले (जिनकी संख्या कई गुनी अधिक है) वे अँग्रेज़ी बोलने के लिए विवश हैं। सच पूछा जाए तो देश में अँग्रेज़ी ठीक से समझने वाले तो आपको कुछ मिल भी जाएँ, पर अच्छी अँग्रेज़ी बोलने वाले कठिनाई से ही मिलेंगे। वस्तुतः आज़ादी के इन 75 वर्षों में अँग्रेज़ी बोलने वालों की संख्या में बहुत कमी आई है पर अँग्रेज़ियत बहुत बढ़ी है। अच्छी अँग्रेज़ी पढ़ाने वाले स्कूल आज आपको बहुत कम मिलेंगे, पर अँग्रेज़ी का नाम लेने वाले साधारण स्कूलों की भरमार दिखेगी।

नई तकनीकी सुविधाओं की दृष्टि से भी हिन्दी ने अपना पर्याप्त विस्तार किया है। अँग्रेज़ी की तुलना में हिन्दी में मोबाइल पर बात करने वालों की संख्या की तुलना की कोई सोच ही नहीं सकता। वाट्सऐप, ईमेल पर भी हिन्दी का बढ़ता प्रभाव भारत में स्पष्ट दिख रहा है। हिन्दी में यान्त्रिक सुविधाओं का दिन–प्रतिदिन विकास हो रहा है, भाषा के सन्दर्भ में भी यदि हम विचार करें तो देश तेज़ी से विकास कर रहा है पर समस्या यह है कि हमारा ध्यान मानकीकरण पर उतना नहीं है जो हिन्दी के यथोचित विकास के लिए आवश्यक है। हिन्दी में फ़ॉन्ट तो कई बन गए पर उनकी प्रायोगिक समस्याओं पर हमारा ध्यान नहीं जाता। एक उदाहरण देकर स्पष्ट करना चाहूँगा। देवनागरी लेखन का नियम है कि ह्रस्व 'इ' संयुक्त व्यंजन के अंतिम व्यंजन की खड़ी रेखा को स्पर्श करनी चाहिए, जो पहले संयुक्त व्यंजन पर ही समाप्त हो जाती है। हम यह भूल जाते हैं कि ह्रस्व 'इ' और दीर्घ 'ई' की मात्राओं के लेखन–विधान अलग अलग हैं। परिस्थिति शब्द में 'स' और 'थ' के संयुक्त रूप में ह्रस्व 'इ' की मात्रा 'थ' की खड़ी रेखा तक आनी चाहिए जबकि वह 'स' तक ही पहुँचती है। मुझे विश्वास है कि भारत का तकनीकी ज्ञान हिन्दी को समृद्ध करेगा और हम इस क्षेत्र में विश्व के विकसित देशों के समकक्ष शीघ्र ही हो जाएँगे।

मुझे लगता है कि पिछले एक दशक में देश की नई राजनीतिक व्यवस्था ने अपनी भाषाओं के सन्दर्भ में समाज को नई दृष्टि और ऊर्जा दी है। अब देश बदलता दिख रहा है। अपने देश, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति के महत्व को हम अब समझने लगे हैं। देश अब नए नेतृत्व में यह भी अनुभव करने लगा है कि आत्म सम्मान ही विश्व सम्मान की आधार शिला है। भाषा के प्रति हमारी उदासीनता और उदार नीति देश के चतुर्दिक बौद्धिक विकास में बाधक रही है यह बात अब देश समझ रहा है और देश के बौद्धिक समाज को यह लग रहा है कि देश के सर्वतोमुखी विकास के लिए अँग्रेज़ी नहीं स्वभाषा का विकास अधिक महत्त्व रखता है और भारतीय भाषाओं के विकास में ही देश का भविष्य सुरक्षित है।

ई-मेल पता : vimleshkanti@gmail.com

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के आलोक में प्रसाद के नाटक

डॉ. (प्रो.) मुकेश कुमार मिश्र

(प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर से ऐतिहासिक नाटकों की परिचर्चा पर आधारित आलेख)

जयशंकर प्रसाद ने इतिहास के प्रवाह में भारतीय स्वतन्त्रता के कई प्रतिमान रचे हैं, उनके नाटकों के गीतों ने स्वतन्त्रता के कई संकेत क्रान्तिकारियों और जन के समक्ष प्रस्तुत किए हैं। प्रसाद ने भारतीय जनमानस को इतिहास के धरातल पर रेखांकित किया। आजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त और ध्रुवस्वामिनी नाटक प्राचीन भारतीय राजाओं के सन्दर्भ तो हैं, परन्तु भारतीय स्वतन्त्रता के लिए वे नाटक इस अर्थ में महत्वपूर्ण हैं कि उन्होंने भारतीय लोगों में स्वतन्त्रता की क्रान्ति भर दी, प्रसाद के नाटकों में स्वतन्त्रता के साथ मानवीय जीवन मूल्यों को भी बड़े पैमाने पर देखा जा सकता है–

प्रसाद ऐसे नाटककार है जिन्होंने भारतीय इतिहास को आधार बनाकर, ऐतिहासिक राजाओं के निमित्त स्वतन्त्रता का बिगुल बजाया, नारी सन्दर्भों से लेकर पुरुष सन्दर्भों तक, उन्होंने ध्रुवस्वामिनी, अलका, मालविका के स्त्री पात्रों के माध्यम से जन के बीच नारी सशक्तिकरण का जो सन्दर्भ प्रस्तुत किया वह अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्राचीन कालीन राजा चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु को संकेतात्मक रूप से 'नाटक' का आधार बनाया है।

प्रसाद के नाटकों में अतीत, वर्तमान के साथ–साथ गहराता चलता है। उनके नाटक जहाँ स्वतन्त्रता संग्राम की व्याख्या करते है, वहीं यह कह सकते हैं कि उनके नाटक स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति के दर्पण हैं। उनका नाटक साहित्य 1910 से 1933 ई. के बीच का है, उनके नाटकों के सन्दर्भ के गीत प्रमाण हैं, 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'हिमाद्रि

तुंग श्रृंग' से जो स्वर गूँजा है वह जनमानस की राष्ट्रीय चिन्ता का मुख्य स्वर है। इतिहास गवाह है कि लगभग 20 लाख भारतीय अकाल के कारण मौत के घाट चढ़े, उसी से अँग्रेज़ो के प्रति अनास्था का भाव जनमानस में प्रवाहित हुआ, यह भाव अँग्रेज़ो के प्रतिकूल विचारों के कारण अधिक विकसित हुआ।

प्रसाद इसी भाव के संवाहक होकर अपने नाटकों में जीवन्त भारतीय पात्रों की रचना करने में जुट गए। उनके नाटकों की विषय वस्तु के साथ–पात्र भी, जो वर्तमान की व्याख्या करते हैं, 'इतिहास' का सन्दर्भ विषय उनके 'स्वतन्त्र' भारत की क्रान्ति का आधार है।

वह अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय इतिहास की गौरव गाथा को प्रतिष्ठित करते हैं, उन्होंने 'इतिहास' को नाटक साहित्य के धरातल पर देखा था। उनकी दृष्टि मध्य कालीन इतिहास पर न होकर महाभारत और हर्षवर्द्धन के कालखण्ड पर टिकी है। वैसे देखा जाए तो भारत का प्राचीन सांस्कृतिक गौरव– बौद्ध युग, मौर्य युग और गुप्त युग में ही सुरक्षित है। उन्होंने नाटकों के माध्यम से इतिहास को रेखांकित किया है। उनका नाटक चन्द्रगुप्त अखण्ड भारत की परिकल्पना के साथ समय के सापेक्ष जहाँ चलता है, वहीं वह भारतीय स्वतन्त्रता के उन वीर क्रान्तिकारियों में श्रद्धा का भाव भरता है, जिसमें स्वतन्त्र भारत की परिकल्पना साकार हो सकी है। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त और धुवस्वामिनी द्वारा प्रसाद ने भारतीय इतिहास का जो स्वरूप प्रदर्शित किया, उसमें भारतीय जीवन मूल्यों के साथ, भारतीय समाज के यथार्थ का सन्दर्भ मिलता है, चन्द्रगुप्त नाटक में जहाँ एक तरफ़ भारतीय इतिहास की गौरव गाथा निहित है। वहीं स्वतन्त्रता के कई सन्दर्भ भी दिखाई देते हैं, भारत की स्वतन्त्रता प्रायः हमेशा अपने अतीत से अनुप्रमाणित रही है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक को ही लें, तो नाटक के केन्द्र में नन्दवंश का विध्वंस, सिकन्दर का अभिमान, सिल्यूकस पर विजय, कारनेलिया से परिणय, मौर्य का शासन इस नाटक के केन्द्र में रहा है। अधिकांश ऐतिहासिक तथ्यों के समावेश के कारण ही राष्ट्रीय सन्दर्भ में इसका अलग महत्व है।

प्रसाद जी का नाट्य रचना संसार स्वतन्त्रता के समय का रहा है। अर्थात कह सकते है कि प्रसाद ने अपने नाटकों का स्वरूप ऐतिहासिक रखा, किन्तु उसका संकेतात्मक सन्दर्भ उस समय के जन को समझाने हेतु, पुराने भारत के राष्ट्र वैभव को प्रदर्शित करता है। उन्होंने नारी विश्लेषण को भी अपने नाटक आधार बनाया। 1857–1936 के बीच भारत के नारी स्वरूप को उन्होंने भली–भाँति समझा और परखा था। उन्होंने सर्वप्रथम अपने नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' के माध्यम से भारत के 'नारी' स्वरूप को 'भारतीय स्वतन्त्रता' के वीरों के बीच रख कर नारी के महत्व को, उसके स्वाभिमान को बताने का प्रयास किया। सुभद्रा कुमारी चौहान, अरुणा आसफ़ अली जैसी नारियों में प्रसाद के नारी विश्लेषित ध्रुवस्वामिनी नाटक का विशेष प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इतना ही नहीं, उनके नाटकों में विभिन्न नारी पात्र– अलका, मालविका, कल्याणी, देवसेना के माध्यम से उन्होंने नारी के मनोविश्लेषणात्मक स्वरूप को भी रेखांकित करने का प्रयास किया, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। उनका यह मानना था कि स्वतन्त्र भारत की कल्पना नारी के बिना असम्भव है। इसलिए राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में नारियों की भूमिका बड़ी सार्थक रही। इसी सन्दर्भ को रेखांकित करते हुए उन्होंने मौर्य काल की नारियों का एक सुन्दर चित्र अपने नाटकों में प्रदर्शित किया।

प्रसाद का नाटक 'चन्द्रगुप्त' जहाँ ऐतिहासिक महत्व रखता है, वहीं वह मगध और मालव की क्षेत्रीयता की भावना को भूल कर समग्र आर्यावर्त्त को ध्यान में रखकर भारतीयों को सोचने–समझने का, संकल्प का प्रावधान करता है। वह भारत के जिस कालखण्ड कथानक का सन्दर्भ प्रदर्शित करते हैं, वह भारत के सृजन का कालखण्ड था। उन्हीं की देन है कि आज का स्वतन्त्र भारत नए इतिहास के निर्माण हेतु अतीत के इतिहास से शक्ति प्राप्त कर रहा है।

उनके नाटकों की अस्मिता ने हिन्दी नाट्य साहित्य को चर्मोत्कर्ष पर पहुँचाया था, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को दिशा देने के कार्य को प्रसाद ने अपने नाटकों के साथ अपने काव्यों में भी विशेष स्थान दिया था। उनके नाटक जहाँ इतिहास के बहाने स्वतन्त्रता के आधार बनाते हैं, तो उनके नाटकों में गीतों के प्रयोग नाटक को और प्रमाणित रूप में प्रदर्शित कराने में सहायक होते हैं। प्रसाद के नाटकों का मंचन करना थोड़ा जटिल है किन्तु उनके नाटकों के पात्रों का 'एकल–अभिनय' किया जा सकता है। 'चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु, नाटक के नायकों का मंचीय चित्रण भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान रंग कर्मियों ने समय–समय पर करके उसके संकेतात्मक सन्दर्भ को चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु जैसे नाटकों के माध्यम से जन मानस के बीच समझ पैदा करने का कार्य किया।

प्रसाद के नाटक निर्माण तथा भारतीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन, दोनों अपने–अपने समय की पूर्ण व्याख्या करते हैं। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन बंगाल अकाल, मुस्लिम लीग की स्थापना, स्वदेशी आन्दोलन, होमरूल, इरविन समझौता, लाहौर अधिवेशन के बीच अपने उफान पर था। उसी समय प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'आजातशत्रु', 'ध्रवस्वामिनी' के प्रकाशन ने भारतीय जनमानस में स्वतन्त्रता की एक नई क्रान्ति पैदा कर दी। यह कह सकते हैं कि उनके नाटकों एवं गीतों को पढ़ कर भारतीय जनमानस एवं क्रान्ति के वीरों ने शहर–शहर स्वतन्त्रता के आन्दोलन में अपनी भागीदारी को स्पष्ट किया और अपनों के सहयोग से स्वन्तन्त्रता आन्दोलन का एक नया इतिहास रचा। प्रसाद के नाटकों के संवाद स्वयं उद्घोषक होकर, जन मानस के अन्तस में उतर कर स्वयं अन्दर से आन्दोलन के लिए प्रेरित करते हैं। प्रसाद ने समय और परिस्थिति के अनुसार भारतीय जनमानस को सन्देश देते हुए उनके पुराने वैभव को याद दिलाने के लिए ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। उनका नाटकीय सन्दर्भ प्रायः समय के साथ चला इसलिए उनके नाटकों की प्रासंगिकता हर परिस्थिति में सटीक बैठती है। वह नाटक को ऐतिहासिक सन्दर्भ इसलिए देते हैं कि वह प्रचीन भारत की राजशाही व्यवस्था से प्रभावित रहे। भगवान शिव की नगरी में जन्मे प्रसाद ने अपने नगर

की वैभवशाली राजसत्ता का अध्ययन करने के बाद ही भारत के प्राचीन राजाओं अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त को आधार बनाकर अपने नाटकों की रचना की। पुरातन भारत के वैभवशाली राजाओं के व्यक्तित्व और उनकी राजसत्ता का प्रभाव दिखाने का कार्य किया प्रसाद जी का दृष्टिकोण इतिहास के साथ भारतीय अधिक रहा वास्तविक रूप में देश और जाति के स्वाभिमान को ऊपर उठाने के लिए मूलतः इतिहास का आश्रय विश्वसनीय होता है, और प्रेरणा और शक्ति का स्रोत इतिहास है, जो जीवन को गति प्रदान करने, संघर्ष के लिए उत्साहित करने का कार्य करता है। प्रसाद ने इन्हीं सन्दर्भों को रेखांकित करते हुए अपने नाटकों की रचना की थी।

प्रसाद भारतीय साहित्य नाट्य विधा के ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने अपने नाटकों के ऐतिहासिक सन्दर्भों के माध्यम से भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को गति एवं दिशा देने का कार्य किया। वह भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने अतीत के माध्यम से वर्तमान का सन्दर्भ जन मानस के बीच दर्ज करके भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के क्रान्तिकारियों एवं वीरों में उत्साह भरने का कार्य किया।

अतः हम कह सकते हैं– प्रसाद ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से स्वयं स्वतन्त्रता का बिगुल बजाया।

ई-मेल : mishramukeh602@gmail.com

स्वतन्त्रता संग्राम में गुमनाम नायकों की भूमिका

गोविन्द सिंह यादव

आज़ादी का अमृत महोत्सव और चौरी–चौरा शताब्दी वर्ष को गोरखपुर में देख कर ऐसा लगा कि आज़ादी में भाग लेने वाले सारे क्रान्तिकारी जिनके बारे में आज तक सुना भी नहीं था वह सभी एक मंच पर उजागर हो गए। इसकी रूप–रेखा जिन लोगों ने बनाई उनमें संस्कृति सचिव, गोरखपुर के माननीय सांसद रविकिशन जी और भारतेन्दु नाट्य अकादमी के अध्यक्ष श्री रवि खरे तथा भारतेन्दु नाट्य अकादमी के निदेशक आनंद कुमार, जो अपर सचिव भी हैं। इन लोगों की सोच का परिणाम है गुमनाम लोगों के नाम आज़ादी का रंग उत्सव। इन सब के पीछे जिन्होंने महत्वपूर्ण सोच दी वो हमारे माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री की गुमनाम आज़ादी के दीवानों की खोज है। इस कड़ी में मानवेंद्र त्रिपाठी द्वारा नाटक 'क्रान्तिवीर आज़ाद' का भी मंचन हुआ। आज़ाद था... आज़ाद रहेगा... की उद्घोषणा करने वाले चंद्रशेखर आज़ाद के जीवन की कहानी है नाटक क्रांन्तिवीर आज़ाद। नाटक में आज़ाद के साथ–साथ उसके समकक्ष क्रान्तिकारियों यथा भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक़ उल्लाह ख़ान, सुखदेव, राजगुरु आदि का परिचय एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनकी रणनीति, कार्यशैली एवं विचारों को प्रदर्शित किया गया है। युवा क्रान्तिकारी चौरी चौरा संग्राम के बाद गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन वापस लेने से अत्यंत दुखी हो गए। विवश होकर एक संगठन हिन्दू रिपब्लिकन एसोसिएशन का गठन किया। गठन के अगुआ चंद्रशेखर आज़ाद ही रहे। समस्त युवा क्रान्तिकारीयों ने आज़ाद का सम्मान एक अग्रज की तरह करते थे एवं उनके निर्णय को स्वीकार करते थे। नाटक में चंद्रशेखर आज़ाद के माता पिता के त्याग और सहयोग को बड़े ही सुंदर तरीक़े

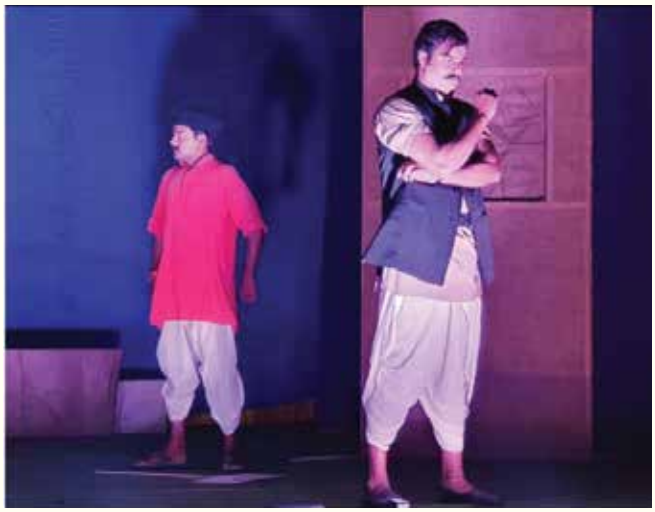

से दर्शाया गया। नाटक में स्वतन्त्रता आन्दोलन से जुड़े कुछ नेताओं की ढुलमुल नीतियों से क्षुब्ध आज़ाद को जवाहरलाल नेहरू से बहस करते हुए भी दर्शाया गया है। अपनी आज़ादी की उद्घोषणा को क़ायम रखने के लिए अँग्रेज़ सिपाहियों से घिरे आज़ाद ने अपने वचन की रक्षा स्वयं को गोली मारकर की। इन नाटकों को देखने के बाद मन में बहुत सारे प्रश्न आते हैं। कितने भारतवासियों ने मिलकर हमें स्वतन्त्रता दिलाई है जिनके विचारों, जिनके संघर्षों से आज हम आज़ादी की साँस ले पा रहे हैं। उन सभी स्वतन्त्रता संग्रामियों को आज मेरा नमन् है, या कहें तो इस देश का उनको नमन् है कि आज 75वें वर्ष में आज़ादी की वर्षगांठ पर सरकार ने एक महत्वपूर्ण क़दम उठाया कि हम क्यों न उन लोगों को याद करें जिनके योगदान के बग़ैर आज़ादी पाना मुश्किल था। उनके योगदान को हम सलामी दें। यह उत्सव उन्हीं स्वतन्त्रता सेनानियों को एक सलामी है। इस उत्सव की ख़ासियत 75 ज़िलों में जहाँ जहाँ के स्वतन्त्रता संग्रामी

रहने वाले थे वहाँ से मिट्टी मँगा कर एक गड्ढा खोद के उसमें उस मिट्टी को डाल के एक रुद्राक्ष का पेड़ लगाया गया जो 75वीं स्वतंत्रता की वर्षगाँठ को सलाम है।

इसी कड़ी में एक और नाटक जिसका निर्देशन संजय उपाध्याय जी ने किया जिसका नाम था कंपनी उस्ताद। एक इलाक़े में विदुषी बड़की दुल्हन की इच्छा अनुसार हाजरा बेगम के सहयोग से नृत्य संगीत की पाठशाला क्या खुल गई और कंपनी उस्ताद शिक्षक क्या हुए, सारा इलाक़ा उनका विरोधी बन बैठा। स्थानीय विरोध और विपरीत स्थितियों से विवश होकर कंपनी उस्ताद, बड़की दुल्हन और हाजरा बेगम जैसे संग्रामी अपने प्रिय इलाक़े को छोड़कर कोलकाता चले गए। जहाँ उनकी नौकरी महादेव सेठ के यहाँ लग जाती है। वे वहाँ जाकर चौकीदारी का काम करने लगते हैं। वहीं सेठ के भतीजे सुख नायक के कहने पर सोना बाई के कोठे पर जाते हैं जो उस समय की प्रसिद्ध कोठे वाली थी जिसकी ख्याति ठुमरी गायन के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कोठे पर सोना बाई के नृत्य व संगीत सुनता है, सुख नायक वहाँ शाबाशी देता है पर कंपनी उस्ताद उसमें तर्ज़ की अशुद्धि बताते हैं, निवेदन करने पर पूरा करके गाते हैं। उनके मोहक स्वर और सधे हुए रियाज़ से प्रसन्न होकर सोना बाई उनसे शादी करना चाहती है जिसे कंपनी उस्ताद स्वीकार कर लेते हैं। महादेव सेठ को इस बात की भनक लग जाती है कि कंपनी उस्ताद सोनाबाई की कोठी पर जाते हैं। वह उन्हें नौकरी से निकाल देता है। यहाँ से उनके जीवन का तीसरा पड़ाव नरेश पल्लेदार की क्रान्तिकारी टीम के साथ शुरू होता है। यही कंपनी उस्ताद क्रान्तिकारियों के लिए गीत लिखते हैं और देश को आज़ाद कराने की मुहिम में जुट जाते हैं। यहीं पर सोनबाई से फिर भेंट होती है और कंपनी उस्ताद का अभियान और तेज़ हो जाता है। वे अपने गाँव वापस लौटते हैं जहाँ वह क्रान्तिकारियों के लिए आर्थिक मदद देने के लिए नोट छापने की छापा मशीन लगाते हैं। इसी दौरान खुफ़िया के पीछे लगने के कारण कंपनी उस्ताद पकड़ लिए जाते हैं उन्हें क़ैद हो जाती है। 7 साल के बाद जब जेल से बाहर आते हैं तो उनकी मुलाक़ात हाजरा बेगम से होती है। उससे मिलकर मन हल्का करते हैं। अब दोनों गाँव में रहते हैं। उनका यह जीवन लोगों को पसंद नहीं है। ऐसा ही व्यक्ति है बाबू जो, कंपनी उस्ताद को तबाह करने की जुगत में लगा रहता है। यह व्यक्ति अँग्रेज़ी सत्ता का पिट्ठू है और चाहता है कि कंपनी उस्ताद मेले में अपनी कंपनी लेकर चलें और सबका मनोरंजन करें। कंपनी उस्ताद के कई साथी मारे पीटे गए। उनकी सारी मण्डली नष्ट हो गई। धीरे–धीरे दुनियाँ के सामने कंपनी उस्ताद एक ऐसी परम्परा बन गए जिसमें जीते हुए आज भी पूरी संस्कृति के लोग उस पर गर्व करते हैं और अपने आसपास उसे खोजते है।

इसी कड़ी में 'बोधू अहीर' नाटक का भी गोरखपुर नाट्य उत्सव में मंचन हुआ जिसका निर्देशन अभिषेक पंडित जी ने किया और यह नाटक बोधू अहीर के योगदन को दर्शाता है। भारत की आज़ादी की लड़ाई में बहुत से नायक हुए जिनके अमूल्य साहस और अमित बलिदान के बूते ही हम आज आज़ाद हैं लेकिन इन महान विभूतियों के साथ देश के हर ज़िले शहर में बहुत से ऐसे वीर शहीद हुए जिनकी चर्चा इतिहास के पन्नों में धूल धूसरित पड़ी है। ऐसा ही एक नाम आजमगढ़ के 17वीं वाहिनी के सूबेदार रामदीन के बेटे बोधू अहीर का है, जिन्होंने अपने बहादुरी और चतुराई से सन 1857 के स्वतन्त्रता विप्लव में आज़मगढ़ के महत्वपूर्ण योगदान को भी रेखांकित करवाया। ये नाटक इसी गुमनाम वीर शहीद पर आधारित है। उन्होंने 3 जून 1857 को ईस्ट इंडिया कंपनी का सबसे बड़ा ख़ज़ाना लूटते हुए आज़ादी के ग़दर में शामिल होने का ऐलान किया। उनके साथ उनके पुत्र राम टहल और होने वाले दामाद माधो सिंह ने भी मातृभूमि के लिए बड़ी बहादुरी से अपनी आहुति दी। आज़मगढ़ के तत्कालीन 17वीं वाहिनी पैदल सेना के तमाम देशभक्त सिपाहियों के सहयोग से बोधू अहीर ने गोरखपुर में आज़मगढ़ होते हुए बनारस जा रहे 7 लाख रुपये के भारी–भरकम ख़ज़ाने को लूटा और लूट के बाद उस ख़ज़ाने का बहुत सारा हिस्सा नाना साहब को दे दिया। बोधू सिंह के नेतृत्व में 17 बटालियन ने आजमगढ़ फैज़ाबाद से लेकर कानपुर तक की लड़ाई लड़ी। अँग्रेज़ो के द्वारा 1857 ईसवी के स्वतन्त्रता विद्रोह के विफल जो जाने के बाद भारत माता के वीर सपूतों ने हार नहीं मानी। यह जो नाटक था, उस वीर स्वतन्त्रता संग्रामी के जीवन पर आधारित था जो एक और गुमनाम सेनानी की बात करता है।

भारतेन्दु नाट्य अकेडमी में चौरी–चौरा शताब्दी वर्ष को ध्यान में रखते हुए एक और नाटक का मंचन किया गया जिसका नाम था 'अग्नि कहीं भड़क ना जाए'। इसका निर्देशन मनोज शर्मा जी ने किया और जिसका लेखन चित्र मोहन जी द्वारा किया गया। यह नाट्य प्रस्तुति 'अग्नि कहीं भड़क ना जाए' ऐतिहासिक क्रान्तिकारी घटना चौरी–चौरा कांड को दिखाने का प्रयास है। यह घटना कब, क्यों और कैसे घटित हुई और इसके क्या दुष्परिणाम अथवा दूरगामी परिणाम हुए इत्यादि सभी बिंदुओं को नाटक में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। यह अँग्रेज़ों, देशी सामन्तों एवं विदेशी ताक़तों के उत्पीड़न, दमन, अपमान और अत्याचार से जूझते हुए यह आरम्भ हुआ और क्रान्ति में परिवर्तित हो गया। चौरी–चौरा घटना उसका एक साक्ष्य है। अनेक देशों ने इस घटना को 1789 में हुई फ़्रांसीसी क्रान्ति जैसा बताया। अँग्रेज़ शासन के विरोध में गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन की शुरुआत की थी। आन्दोलन के तहत देशवासी ब्रिटिश उपाधियों एवं अन्य वस्तुओं का विरोध कर रहे थे। स्थानीय बाज़ारों में भी इस तरह का विरोध जारी था। 2 फ़रवरी 1922 को पुलिस ने आन्दोलनकारी नेताओं को गिरफ़्तार कर अत्यंत बेरहमी से मारा पीटा। इसके विरोध में 4 फ़रवरी 1922 को क़रीब 3000 आन्दोलनकारियों ने थाने के सामने प्रदर्शन कर ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ नारेबाज़ी की।

इसे रोकने के लिए पुलिस ने पहले हवाई फ़ायरिंग की। फिर फ़ायरिंग कर दी। इसमें कई लोगों की मौत हुई और अनेक लोग घायल हुए जिससे आक्रोशित क्रान्तिकारियों ने पुलिस स्टेशन में आग लगा दी जिसमें तत्कालिक दरोगा मुक्तेश्वर सिंह समेत 22 पुलिसकर्मी जलकर मर गए। गाँधी जी ने घटना की जानकारी मिलते ही अपना असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया। चौरी चौरा कांड के अभियुक्तों पर मुक़दमा क्रान्तिकारी संत बाबा राघव दास की ज़बरदस्त पहल पर पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने लड़ा और अधिकांश को मृत्युदंड से बचाने में सफल हुए। मात्र 19 क्रान्तिकारियों को जुलाई 1923 के दौरान फाँसी दे दी गई। सन् 1857 के बाद यह वह पहली घटना थी जिसने सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य को हिला के रख दिया और इसी की गूँज पूरी दुनिया में सुनाई दी। दुनिया के सभी प्रमुख देशों के अख़बारों ने इस घटना के समाचार को प्रमुख रूप से छापा था। इस घटना पर ये नाटक लगभग 60 कलाकारों के साथ मंच पर पहली बार भारतेन्दु नाट्य अकेडमी में मंचित किया गया जिसका प्रदर्शन बहुत ही सराहनीय था। इसी के अन्तर्गत गोरखपुर में आज़ादी का रंग उत्सव का भी आयोजन किया गया जिसमें आज़ादी के गुमनाम नायकों पर एक रंग उत्सव का आयोजन किया गया। इस आज़ादी के रंग उत्सव में अनेक गुमनाम नायकों का योगदान आज़ादी में उनके द्वारा दिए गए बलिदान को नाटकों के माध्यम से दिखाया गया। उसमें जो पहला नाटक था वह नाटक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंग मण्डल द्वारा प्रस्तत किया गया जिसका नाम था 'ख़ूब लड़ी मर्दानी'। नाटक के शीर्षक ख़ूब लड़ी मर्दानी को सुनते ही मस्तिष्क में सर्वप्रथम झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का चित्र उभरता है। शब्द जैसे कि सर्व विदित है कि हिंदी साहित्य की विख्यात कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की कलम से निकले। सुभद्रा जी मात्र कवयित्री ही नहीं, वह स्वतन्त्रता सेनानी भी हैं। यह नाटक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में सुभद्रा जी के योगदान की कहानी है निहालपुर में जन्मीं, सदैव तत्कालिक पुरुष प्रधान समाज में महिला के उत्थान की पक्षधर, मात्र 19 वर्ष की आयु में उनके द्वारा लिखित कविता 'नीम का पेड़' प्रकाशित हुआ। 15 वर्ष की आयु में विवाह के पश्चात् अपने पति लक्ष्मण सिंह के साथ मिलकर गाँधी जी द्वारा संचालित अहिंसा आन्दोलन में हिस्सा लेने लगीं तो 22–23 वर्ष में पहली महिला सत्याग्रही के रूप में जेल गईं। जब उन्हें दूसरी बार जेल की सज़ा हुई तब बेटी ममता उनकी गोद में थी, जिसे अपने साथ लेकर वे जेल गईं। उसके समानान्तर अपनी कविताओं से उन्होंने भारत के जनमानस में देशभक्ति का संचार किया।

ई-मेल : dramatic.art78@gmail.com

→ श्रद्धांजलि

भारत रत्न लता मंगेशकर : जिन्होंने भारतीय संगीत को वैश्विक प्रतिष्ठा दी

सुनंदा वर्मा

ज़रा सोचें, अगर 13 साल की उम्र में किसी को अपने पूरे परिवार का बोझ उठाना पड़े, सारा दिन काम करना पड़े कि पूरे परिवार के खाने के लिए पैसा जमा हो सके, काम खोजने के लिए घर छोड़ कर दूसरे शहर जाना पड़े, पैसा बचाने के लिए बिना खाना खाए सारा दिन चाय पीकर बिताना पड़े, तपती दुपहरी में काम के लिए दूर तक पैदल जाना पड़े कि बस का किराया बचा सके।

भारत में ऐसी ही एक लड़की थी जिसने यह सब किया और उसे इससे भी ज़्यादा कष्ट उठाने पड़े। सफ़ेद साड़ी पहने, बालों की दो चोटियाँ बनाए, एक पक्के हौसले वाली लड़की बड़ी होने पर देश की एक प्रसिद्ध गायिका बनी। वह इतनी प्रसिद्ध हुई कि दुनिया में उसके गानों की सबसे अधिक रिकॉर्डिंग हुई और गिनीज़ बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकार्ड्स में उसका नाम आया।

उस हिम्मती लड़की को हम सब लता मंगेशकर के नाम से जानते हैं।

लता का जन्म 28 सितम्बर 1929 को हुआ। उसके माता – पिता ने उसका नाम हेमा रखा। बाद में हेमा नाम बदल कर लता कर दिया गया। उसके पिता दीनानाथ मंगेशकर महाराष्ट्र प्रदेश के थे, जबकि उसकी माँ सुधामती भारत के गुजरात राज्य की थीं। वे मध्य प्रदेश के इन्दौर शहर में रहते थे।

लता के पिता रंगमंच के एक जाने – माने कलाकार थे और अच्छे गायक भी थे। अगर कोई उनके घर के पास

से निकलता तो उसे किसी न किसी के गाने की आवाज़ सुनाई पड़ती या बज रहे बाजे की आवाज़ आती। अगर कोई घर के पास थोड़ी देर खड़ा होता तो वह नाटक के पात्रों को अपने – अपने डायलॉग का अभ्यास करते हुए आसानी से सुन सकता था। घर के सामने वाले दरवाज़े के बाहर कई जोड़ी चप्पलें और जूते रखे रहते थे। घर में बराबर रौनक़ रहती थी। लगता था, घर में लगातार

कुछ न कुछ हो रहा है। कभी–कभी तो लता भी पिता के नाटकों में भाग लेती थी। ऐसे ही एक नाटक में वह लता बनी थी। उसी दिन से आज तक वह लता के नाम से जानी जाती है।

लता के पिता कठोर स्वभाव के थे। वे पुरातनपंथी और अनुशासन प्रिय थे। उदाहरण के लिए वे घर की सभी औरतों को चूड़ी पहने और माथे पर कुंकुम लगाए देखना चाहते थे। घर में किसी को शृंगार करने की अनुमति नहीं थी। किसी को सिनेमा जाने की भी अनुमति नहीं थी। पर पिता के प्रिय संगीतकार (जो बाद में लता के भी प्रिय संगीतकार बने) श्री के.एल. सहगल के फ़िल्मी गाने सुनने की छूट ज़रूर थी।

बचपन में लता स्कूल नहीं गई। उसे दूसरों को सुनने का बहुत शौक़ था। उसने गाना भी अपने पिता को गाते हुए सुनकर ही सीखा था। लता की तीन छोटी बहनें और एक भाई था। सभी अपने पिता से बहुत डरते थे। लता अपने पिता से इतना डरती थी कि उनके सामने गाने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी।

एक दिन की बात है, जब लता के पिता ने लता को पहली बार गाते हुए सुना तो उन्होंने उसे एक बार फिर से नए सिरे से गाने के लिए कहा। अपनी बेटी को इतना अच्छा गाते सुनकर उन्हें बहुत ही ख़ुशी हुई। उन्हें लगा कि उनकी बेटी उनकी शिष्या होने के लायक़ है। लता उनकी सबसे कम उम्र की शिष्या बनी। वह उसे रोज़ संगीत सिखाने लगे। पिता और बेटी दोनों घंटों गाते रहते और कठिन बंदिशों का अभ्यास करते। हर दिन लता की आवाज़ में सुधार होता और साँसों पर उसका नियन्त्रण बढ़ता जाता, हर शब्द के पीछे का भाव भी उसे समझ में आने लगा। मंच पर अभिनय में भी वह अपने पिता के साथ भाग लेती। वह एक छोटी लड़की तो थी, पर वह एक अच्छी गायिका के रूप में उभर रही थी।

पाँच साल की उम्र में ही लता ने कलाकार और गायिका के रूप में मंच पर आना शुरू कर दिया। लता के पिता उसकी गाने की प्रतिभा को देखकर उसे यह समझाना चाहते थे कि एक कलाकार के लिए विनम्र होना बहुत ज़रूरी है। उनका सोचना था कि यदि एक कलाकार में विनम्रता नहीं है तो वह सफल नहीं हो सकेगा। लता को पिता की यह बात हमेशा याद रही।

लता जब 13 साल की थी, उसके पिता का देहांत हो गया। उसे पिता के मरने के बाद ऐसा लगा जैसे उसकी दुनिया ही उजड़ गई और उसके सारे सपने अचानक चकनाचूर हो गए। लता को अब काम खोजना था, अपनी माँ और चार छोटे भाई बहनों के लिए उसे पैसे चाहिए थे। लता अब अपने को बहुत अकेला महसूस करने लगी पर मन ही मन उसने तय किया कि घर चलाने के लिए और ग़रीबी से उबरने के लिए उसे कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी।

परिवार के एक अच्छे दोस्त विनायक दामोदर कर्नाटकी (जिन्हें लोग मास्टर विनायक नाम से जानते थे) की अपनी एक फिल्म कंपनी थी जिसका नाम 'नवयुग चित्रपट' था। वह मुम्बई में इस कम्पनी का कार्यालय खोलना चाहते थे।

उनकी सहायता से लता भी परिवार के साथ मुम्बई चली गयीं। मुम्बई वह शहर था जहाँ फ़िल्में बनती थीं। विनायक फ़िल्म की दुनिया के बहुत से लोगों को जानते थे और लता की सहायता भी करना चाहते थे। लता तब 16 साल की थी।

लता ने बड़ी मेहनत की, वह रोज़ गाने का रियाज़ करती और अपने साथियों के प्रति दयालु और विनम्र रहती। लता के सामने एक बड़ी समस्या उसकी आवाज़ थी। उसकी आवाज़ पतली और ऊँचे स्वर की थी जो उस समय के लिए अच्छी नहीं मानी जाती थी। उस समय प्रचलन भारी और गहरी आवाज़ का था, जैसी आवाज़ नूरजहाँ, शमशाद बेगम और ज़ोहरा बाई की थी। एक नौजवान लड़की के लिए उस समय की मशहूर गायिकाओं से मुक़ाबला कैसे हो सकता था, ख़ासकर जब उसकी आवाज़ का उस समय प्रचलन भी नहीं था ?

मास्टर हैदर को लता की आवाज़ पसंद थी। एक दिन उन्होंने लता से एक स्टूडियो साथ चलने के लिए कहा जहाँ एक फ़िल्म की शूटिंग चल रही थी। फ़िल्म का नाम था 'मजबूर' और मास्टर हैदर उस फ़िल्म के म्यूज़िक कंपोज़र थे। जैसे ही वे स्टूडियो पहुँचे उन्होंने लता को एक गाना दिया और रियाज़ करने को कहा। लता का मानना था कि वह गाना उनका फ़िल्म जगत में प्रवेश करने का पहला क़दम था। इसके बाद फिर लता ने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

लता जब 18 साल की थी, गुलाम हैदर ने भविष्यवाणी की कि यदि लता अपना संतुलन बनाए रख सकी तो वह आसमान की ऊँचाइयों को छुएगी। लता ने अपना संतुलन बनाए रखा और वह आसमान की ऊँचाईयों तक पहुँच सकी।

यह साल भारत के लिए बहुत ख़ास था। ब्रिटिश राज से भारत की स्वतन्त्रता ने 1947 में दो देशों को जन्म दिया –भारत और पाकिस्तान। उस समय की बहुत मशहूर भारी आवाज़ वाली महिला पार्श्व गायिकाएँ पाकिस्तान चली गईं और अचानक काम के बहुत नए मौक़े सामने आए। लता बराबर मेहनत करती रही और सीखती रही।

जैसे–जैसे लता की लोकप्रियता म्यूज़िक कंपोज़रों के बीच बढ़ती गई, उनके गानों में भी विविधता आने लगी। लोरियाँ, प्रार्थना, लोकगीत, हर भाव के गाने

वह बड़ी सहजता से गातीं। उनके कुछ गाने तो इतने लोकप्रिय हुए कि वे रेडियो स्टेशन से बार–बार प्रसारित किए जाते।

सन 1963 की बात है कि एक दिन देशभक्ति के गीत लिखने वाले मशहूर कवि प्रदीप ने लता को फ़ोन किया। उन्होंने अपने नए गीत की बात लता को बताई। वह चाहते थे कि उनका यह गीत लता गाए। गाना था 'ऐ मेरे वतन के लोगो' और इसे भरी सभा में देश के प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू के सामने गाया जाना था। मौक़ा भारतीय गणतन्त्र दिवस का था और खुले आसमान के नीचे रामलीला मैदान में भारी जनसमूह के सामने उन्हें यह गाना गाना था। चीन से लड़ते हुए भारतीय सीमा की रक्षा करते हुए जिन सैनिकों ने अपनी जान गँवाई थी और शहीद हुए थे, उनकी श्रद्धांजलि में यह गीत गाया जाना था। लड़ाई ख़त्म हुए कुल दो महीने ही हुए थे। कवि प्रदीप की यह कविता बड़ी प्रभावशाली थी और देश की सीमा की रक्षा करते हुए सैनिकों के बलिदान के बारे में थी। लता ने यह गाना ऐसा गाया कि हर एक सुनने वाले की आँखों में आँसू आ गए, यहाँ तक कि प्रधान मंत्री की आँखें भी आँसुओं से भर गईं। यह लता के गाने का प्रभाव था।

एक अच्छी पार्श्व गायिका के रूप में दुनिया भर के लोगों के बीच अब लता की एक पहचान बनने लगी। दुनिया के अच्छे गायकों में पहचान होने का मतलब था कि दुनिया के अच्छे ऑडिटोरियम में उन्हें गाना गाने का मौक़ा मिले। लन्दन का अल्बर्ट हॉल एक ऐसा ही ऑडिटोरियम है। लता को 1974 में इस अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के ऑडिटोरियम में गाने का मौक़ा मिला। लता को सुनने के लिए सारी दुनिया से उनके गाने के शौक़ीन वहाँ पहुँचे। सारा हॉल खचाखच भरा हुआ था। उस रात जैसे ही लता ने गाना शुरू किया, सारे सुनने वाले ख़ुशी से झूम उठे।

लता ने 36 भाषाओं में गाने गाए और उनके गाने के शौक़ीन लोग दुनिया भर में हैं। सन 2004 में हॉलीवुड की एक हिट फ़िल्म 'इटरनल सनशाइन ऑफ़ द स्पॉटलेस माइंड'

में लता का गाया हुआ गाना 'वा'दा ना तोड़' लिया गया।

लता की बहुमुखी प्रतिभा बहुत बार सम्मानित हुई। कई अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों ने लता को मानद डॉक्टरेट की उपाधियाँ दीं। बहुत से जो सम्मान लता को मिले उनमें उन्हें भारत का सबसे बड़ा नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' भी मिला। इसके साथ ही उनका नाम 'गिनीज़ बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकार्ड्स' में भी एक व्यक्ति द्वारा सबसे अधिक अकेले गाना गाने वाले व्यक्ति के रूप में, और 20 भाषाओं में रिकॉर्ड होने वाले व्यक्ति के रूप में दिया गया। मज़े की बात तो यह है कि उनके चाहने वालों के पास तो उनके विभिन्न भाषाओं में गाए हुए गानों की पूरी सूची मिल जाएगी पर लता ने अपने गानों का कोई हिसाब किताब कभी नहीं रखा।

एक, दो चोटियों वाली छोटी बच्ची जो कभी अपने पिता के सामने गाते हुए घबराती थी, वह 65 वर्षों तक सारी दुनिया के सामने गाती रही। लता ने तीन पीढ़ियों के म्यूज़िक डायरेक्टरों के साथ काम किया और उन्होंने देखा कि संगीत में, रिकॉर्डिंग के तरीक़ों में, तकनीक में तथा नियमों में कितना बदलाव आया है।

लता के दोस्त उन्हें एक हँसमुख और साथ ही तेज़ मिज़ाज़ वाली महिला के रूप में जानते थे। लता के साथी लता का सम्मान उनकी लगातार अपने आप को सुधारने की कोशिश के लिए तो करते ही हैं, इसलिए भी करते हैं क्योंकि उन्होंने एक पार्श्व गायिका के अधिकारों के लिए बराबर संघर्ष किया और हार नहीं मानी।

फ़िल्म फ़ेयर पुरस्कार, जो कि फ़िल्म जगत का सबसे जाना माना पुरस्कार है, में पार्श्व गायन के लिए एक अलग से पुरस्कार होना लता की कोशिशों का ही नतीजा है। हर वर्ष के लिए एक अलग सबसे अच्छे पुरुष पार्श्व गायक और एक सबसे अच्छी महिला पार्श्व गायिका के पुरस्कार के पीछे भी लता का ही संघर्ष है। लता की लोकप्रियता इतनी थी कि सबसे अधिक पसंद किए जाने वाले गानों की सूची में उनके गानों की सबसे अधिक

गिनती रहती थी। हर साल सबसे अच्छी महिला पार्श्व गायिका श्रेणी में लता का ही नाम होता था। सन 1969 में लता ने फ़िल्म अवॉर्ड लेना बन्द कर दिया जिससे कि नई प्रतिभाओं को बढ़ावा मिले और वह आगे आएँ।

लता ने गायकों के हक़ के लिए भी काम किया। यह बात तब की है, जब ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड का चलन था। रिकॉर्ड के लिफ़ाफ़े पर फ़िल्म के अभिनेताओं के नाम तो होते थे, पर पार्श्व गायकों के नाम कहीं नहीं होते थे। लता ने इसका विरोध किया। लता ने कहा कि पार्श्व गायक को भी रिकार्ड के लिफ़ाफ़े पर भी अभिनेता जैसा ही श्रेय मिलना चाहिए। अपने अधिकारों की इस लड़ाई में भी लता जीतीं। उन दिनों पार्श्व गायक को हर एक गाने के लिए एक मुश्त भुगतान कर दिया जाता था। लता का सोचना था कि किसी भी फ़िल्म की सफलता में पार्श्व गायक की भी बड़ी भूमिका होती है। इसलिए फ़िल्म को जो लाभ होता है उसका एक अंश रॉयल्टी के रूप में पार्श्व गायक को भी मिलना चाहिए।

आज की बहुत सी मशहूर पार्श्व गायिकाएँ जैसे अलका याज्ञनिक, कविता कृष्णमूर्ति, श्रेया घोषाल, सुनिधि चौहान, लता मंगेशकर को अपना आदर्श मानती हैं। ये सभी लता का एक महान् गायिका के रूप में, और पार्श्व गायन के अधिकारों के लिए लड़ने वाली एक महिला के रूप में सम्मान करती हैं।

लता ने भजन, संस्कृत के श्लोक और लोकगीत सभी गाए। लता ने गानों की धुन बनाई, अभिनय किया, फ़िल्में बनाईं और यहाँ तक कि ज़ेवरों को भी डिज़ाईन किया। उन्हें खाना बनाने, क्रिकेट खेलने, पढ़ने और फ़ोटोग्राफ़ी तक का शौक़ था।

यों तो लता ने हिन्दी फिल्मों के लिए गाना 2006 में ही बंद कर दिया था, पर चुने हुए संगीत कार्यक्रमों और विशेषकर चौरिटी के कार्यक्रमों के लिए वे गाती रहीं। उन्हें जो पसंद था वह करती रहीं और अपनी योजनाओं पर मेहनत करती थीं। हर नई चीज़ को सीखने में उनका मन लगता था। 84 साल की उम्र में भी जब उन्होंने जैन धर्म ग्रंथों के एल्बम बनाने का काम स्वीकार किया, तो उन्होंने एक जैन गुरु से शुद्ध उच्चारण सीखना शुरू कर दिया।

लता दूसरे तरीक़ों से भी समाज सेवा करती रहीं। सन 2001 में उन्होंने पुणे में मास्टर दीनानाथ मंगेशकर अस्पताल की स्थापना की। उसका प्रबंधन लता मंगेशकर मेडिकल फ़ाउंडेशन (मंगेशकर परिवार द्वारा अक्टूबर 1989 में स्थापित) करता है।

लता को हीरों का भी बहुत शौक़ था। वह कहती भी थीं कि गाने के बाद उनका दूसरा सबसे बड़ा शौक़ हीरा था। बचपन से ही उन्हें हीरा बहुत पसंद था। लता जब तक एक जानी मानी पार्श्व गायिका नहीं बन गईं तब तक उन्होंने ज़ेवर नहीं पहने और उन्होंने मन ही मन तय किया कि वे केवल हीरा ही पहनेंगी। लता ने अपने पहले वेतन से माँ के लिए सोने का ज़ेवर और अपने लिए हीरे की एक अँगूठी (जिस पर उनके नाम के दो अक्षर 'एल.एम.' लिखे थे) ख़रीदे थे। वह जहाँ भी जाती थीं हीरों की दुकान पर ज़रूर जातीं और यह जानने की कोशिश करती थीं कि हीरा बनता कैसे है। 75 साल की उम्र में उन्होंने एक हीरे की भारतीय कम्पनी के लिए हीरे के ज़ेवरों के कई डिज़ाईन 'स्वरांजलि' के नाम से तैयार किए। क्रिस्टी नीलामी में उनके डिज़ाईन किये हुए पाँच ज़ेवरों की नीलामी से एक लाख पाँच हज़ार पौंड प्राप्त हुए थे जिसमें से उस आमदनी का कुछ हिस्सा 2005 में कश्मीर में आए भूकंप पीड़ित लोगों की सहायता के लिए उन्होंने दान किया था।

लता ने शादी नहीं की। वह हमेशा परिवार के साथ रहीं और परिवार के लिए रहीं। लता की छोटी बहन आशा भी एक बहुत सफल पार्श्व गायिका हैं। आशा भी लता के पदचिह्नों पर चलीं और धीरे– धीरे पार्श्वगायन में उन्होंने भी अपनी ख़ास गायन शैली बनाई। स्वभाव से, गाने की स्टाइल से, और गाने के लिए जिस प्रकार के गाने दोनों चुनती थीं, लता और आशा दोनों आपस में बहुत अलग थीं।

परिस्थितियों ने उन्हें पार्श्वगायिका बना दिया और वे बराबर कोशिश करती रहीं कि अपने श्रोताओं के सामने वह अच्छी प्रस्तुति दे सकें।

आज सुर कोकिला भारत रत्न लता मंगेशकर हमारे बीच नहीं हैं, पर उनके स्वरों की गूँज हर संगीत प्रेमी के कानों में निरन्तर गूँजती रहेगी। उन्होंने भारतीय संगीत को वैश्विक प्रतिष्ठा दी। दिवंगत लता जी की सरस स्मृतियों को हमारी श्रद्धांजलि।

ई-मेल : sunandaverma@yahoo.com

कच्ची पगडण्डियों से स्वर्ण सोपानों की ओर

चेतना वशिष्ठ

"जो हर पल जूझते जीवन से, धुन के मतवाले होते हैं,
जो जीवन गाथा लिख जाते वो लोग निराले होते हैं"

जैसे बहती नदी सभी बाधाओं को चीरते हुए अपनी मंज़िल ढूँढ लेती है ऐसे ही संसार में कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो जीवन की विपरीत परिस्थितियों का दृढ़ता से सामना करते हुए सभी बाधाओं को पार कर निःस्वार्थ भाव से समाज और अपने देश की सेवा कर अपना लक्ष्य प्राप्त करते हैं।

इस आलेख में मैं कुछ ऐसे ही व्यक्तित्वों की बात करने जा रही हूँ जिनकी जीवन की शुरुआत ही कच्ची पगडंडियों और कांटों भरे रास्ते से हुई, परन्तु इनकी कुछ कर गुज़रने की चाह और निःस्वार्थ भाव से किए गए कार्यों ने इनको आज उस ऊँचाई पर खड़ा कर दिया है जिसके समक्ष आज सम्पूर्ण जगत नतमस्तक है। इन्होंने कुछ ऐसे अलग हटकर कार्य करने का निर्णय लिया जिनकी वजह से कामयाबी की स्वर्ण सोपान पर चढ़कर ये आज इस ऊँचे मुक़ाम पर खड़े हैं। हथेली की लकीरों में लोग अपनी नियति खोजते हैं, परन्तु इन व्यक्तित्वों का संघर्ष हथेली की लकीरों से कहीं ऊपर है। ये वो व्यक्तित्व हैं जो भाग्य पर नहीं अपितु कर्म पर विश्वास रखते हैं। इनकी दृढ़ता इस बात का प्रमाण है कि कड़े परिश्रम से और निःस्वार्थ भाव से किए गए कार्यों से अपने दुर्लभ लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। ये वे व्यक्तित्व हैं जो अपने काम को भगवान की अराधना का दर्जा देते हैं।

यहाँ मैं पहले बात कर रही हूँ एक ऐसी महिला की जो साधारण–सी चादर जैसे कपड़े पहने और गले में आदिवासी जीवन शैली की सी मालाएँ पहने, नंगे पैर ही माननीय राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद के करकमलों से

पद्म श्री सम्मान लेने जब राष्ट्रपति भवन पहुँची तब सभी दर्शक उस महिला को आश्चर्यचकित होकर देखते रह गए। मैंने भी न्यूज़ चैनल पर जब पद्म श्री सम्मान प्राप्त करते हुए इस सादगी भरी महिला को देखा तब मुझे भी इनके बारे में जानने की उत्सुकता हुई।

मुझे वह दृश्य देखकर यह लग रहा था कि जहाँ एक ओर एम. सी. मेरीकॉम, पी. वी. सिंधु और कंगना रणौत जैसी बड़ी–बड़ी हस्तियाँ पद्म श्री सम्मान लेने राष्ट्रपति भवन पहुँची हुईं थीं, वही दूसरी ओर अति साधारण सी दिखने वाली इस आदिवासी महिला ने कैसे अपनी एक अलग

ही पहचान बनाई हुई थी। इसलिए इस महिला के बारे में जानने की उत्सुकता होना स्वाभाविक ही था और क्यों न हो यह तो हम सभी भली–भाँति जानते हैं कि पद्म श्री सम्मान सर्वोच्च नागरिक सम्मानों में से एक है और इस पद्म श्री सम्मान को प्राप्त करने वाली ये वह अतुलनीय शख़्सियत है जिसने अवॉर्ड की परिभाषा ही बदल दी।

अपने माँ–बाप से बचपन में जब हम कहानी सुनते थे, उन कहानियों में ज़्यादातर बेहद ही आम जीवन जीने वाले, बहुत ही साधारण व्यक्तित्वों का ज़िक्र रहता था कि कैसे अभावों में पला इंसान, बिना किसी सुख–सुविधा या साधन के अपनी मेहनत और लगन से एक दिन आगे चलकर बहुत बड़ा व्यक्तित्व बना। उदाहरण के तौर पर जैसे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की कहानी, कि कैसे अभावों में पलकर अपनी कठोर तपस्या और मेहनत व लगन से आगे चलकर एक दिन वे देश के प्रथम राष्ट्रपति बने। आज के समय में इसी तरह हमारे माननीय प्रधानमंत्री, श्री नरेन्द्र मोदी जी भी ऐसे अद्भुत, कर्मठ व्यक्तित्व की एक जीती जागती मिसाल हैं। ऐसे ही अनेकों साधारण जीवन जीने वाले कामयाब व्यक्तित्वों की यही कहानियाँ हमारी प्रेरणा का स्रोत बन जाती हैं और ऐसे व्यक्तित्व हमारे आदर्श बन जाते हैं। ऐसे किरदारों की कहानियों के अंजाम को तो देखा जाता है, लेकिन उनकी शुरुआती परिस्थितियों से जूझने के उनके अदम्य साहस को नहीं। ये वे व्यक्तित्त्व हैं जिनके लिए जगत एक रणभूमि है और ये इसके योद्धा हैं।

आइए अब हम सबसे पहले पद्म श्री सम्मान प्राप्त करने वाली उस साधारण व्यक्तित्व की महिला के बारे में बात करें। इस अद्भुत व्यक्तित्व के बारे में उत्सुकतावश जो मैंने जाना वह इस पत्रिका के माध्यम से आप सुधि पाठकों के साथ भी साझा कर रही हूँ। ये पद्म श्री प्राप्त करने वाली महिला जंगल की इनसाइक्लोपीडिया कही जाने वाली तुलसी गौड़ा हैं।

तुलसी गौड़ा का पहला नाम ही 'तुलसी' जो कि पवित्र पौधे के साथ–साथ एक गुणकारी औषधीय पौधा भी है, से जुड़ा हुआ है। तुलसी गौड़ा का जन्म 1944 में कर्नाटक

के एक गाँव होन्नली स्थित, हक्काली जनजाति में हुआ था। उनके पिता का साया उनके सर पर से बचपन में ही उठ गया था। छोटी–सी उम्र से ही वे अपनी माँ के साथ पौधों की नर्सरी में काम करती थीं। तभी से शायद उनका पेड़–पौधों के साथ लगाव बढ़ता गया। पेड़–पौधों से तुलसी गौड़ा का नाता इसीलिए दशकों पुराना कहा जा सकता है। वे पिछले छः दशकों से पर्यावरण संरक्षण के काम में जुटी हुई हैं। वे 'राज्य के वनीकरण' योजना में कार्यकर्ता के तौर पर शामिल हो गई थीं। तुलसी ने बचपन से पेड़–पौधे को अपने जीवन में शामिल कर लिया था। तुलसी गौड़ा कभी स्कूल के दरवाज़े की चौखट पर नहीं चढ़ीं, परन्तु तुलसी गौड़ा ने जिस कर्तव्यबोध और निःस्वार्थ भावना से कार्य करने की जो उच्चतम् शिक्षा प्राप्त की है वह किसी स्कूल में नहीं मिल सकती।

बचपन से ही पेड़–पौधों के प्रति उनका जो लगाव रहा है, उस लगाव के ही कारण जितनी जानकारी इनको पेड़–पौधों, विशेषकर जंगली पेड़–पौधों के बारे में है, उतनी जानकारी शायद बड़े से बड़े वनस्पति वैज्ञानिकों को भी न हो। इसलिए तुलसी गौड़ा को जंगल का

इनसाइक्लोपीडिया कहना उचित ही माना जाएगा। उन्होंने अब तक 40 हज़ार से भी ज्यादा पौधे लगाए हैं। अपने अनुभव और समझ से इस तरह पर्यावरण संरक्षण में उनका अमूल्य योगदान है। जंगलो में किसी तरह के पेड़ों के बीच उनकी उत्पति के लिए आवश्यक 'मदर ट्री' की पहचान करने में तुलसी गौड़ा को महारत हासिल है। 72 साल की तुलसी गिनकर नहीं बता सकतीं कि इन्होंने अब तक कितने पेड़ लगाए हैं। 40 हजार पेड़ों का अंदाज़ा करने वाली तुलसी ने 40,000 से भी कहीं ज़्यादा पेड़ लगाए होंगे।

प्रकृति के लिए इनका प्रेम जंगल के वृक्षों के हर पत्ते में मानों कूट–कूट कर भरा है। तुलसी गौड़ा ने स्वप्न में भी न सोचा होगा कि जो पेड़–पौधे उनके लिए किसी परिवार से कम नहीं हैं, उन पेड़–पौधों के लिए उनकी निःस्वार्थ भाव से की गई सेवा एक दिन उनको राष्ट्रपति भवन की स्वर्ण सोपानों तक ले जाएगी।

इसी तरह एक और व्यक्ति साधारण सा लिबास पहने पद्म श्री सम्मान लेने राष्ट्रपति भवन पहुँचा हुआ था। उसका बेहद साधारण व्यक्तित्व अपनी ओर सभी का ध्यान आकृष्ट कर रहा था। ये व्यक्ति था हरेकाला हजब्बा, जिसने संतरे बेचकर बच्चों के लिए अपने गाँव में स्कूल खोला। ऐसे नेकदिल और निःस्वार्थ भाव से कार्य करने वाले व्यक्ति के बारे में मैंने जो कुछ जाना–समझा वह आप सभी के साथ साझा करना चाहती हूँ।

इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि ग़रीबी की मार से जूझता हुआ इंसान जब ग़रीबी को ही अपनी ताक़त बना लेता है तब वह एक दृढ़ता की मिसाल बन जाता है। इसी तरह जीवन की कठोर परिस्थितियों से जूझते हुए और अभावों के परिवेश में जीवन निर्वाह करते हुए 64 वर्षीय हरेकाला हजब्बा को शिक्षा के क्षेत्र में योगदान के लिए देश के चौथे सबसे बड़े नागरिक सम्मान पद्म श्री से नवाज़ा गया। माननीय राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद के कर कमलों से प्राप्त इस पद्म श्री सम्मान को पाकर इस

व्यक्ति ने हज़ारों–लाखों ऐसे लोगों को सपने देखने का हक़ दिया है जो अपने जीवन में कुछ कर गुज़रने की चाह रखते हैं।

मूलरूप से कर्नाटक के रहने वाले हरेकाला हजब्बा को अक्षर संत के नाम से जाना जाता है। उनके गाँव में कोई स्कूल नहीं था इसलिए उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा तक भी नहीं मिली। उनको लेकिन जोड़ना घटाना अच्छी तरह आता है। वे संतरे बेचकर अपना परिवार चलाते थे। एक दिन हर रोज़ की तरह जब वो संतरे बेच रहे थे तभी उनके पास कुछ विदेशी टूरिस्ट संतरे का भाव इंग्लिश में पूछने लगे। लेकिन पढ़ा–लिखा न होने के कारण वे उनको संतरे के दाम नहीं बता पाए। उनको तब यह महसूस हुआ कि पढ़ाई–लिखाई का क्या महत्व है। बस तभी से उन्होंने ठान लिया था कि अपने इस छोटे से गाँव में बच्चों के लिए एक स्कूल खोलना अति आवश्यक है। वे नहीं चाहते थे कि जो उन्होंने झेला वो उनकी आने वाली पीढ़ी भी झेले। इसके बाद उन्होंने संतरे बेचकर पैसे जमा करना शुरू किया और अपनी जमा पूँजी से वर्ष 2000 में उन्होंने अपने गाँव में एक एकड़ की जमीन में स्कूल बनवाया ताकि गाँव के बच्चे स्कूली शिक्षा हासिल कर सकें।

हरेकाला के स्कूल में अभी प्राथमिक स्तर पर पढ़ाई होती है। लेकिन भविष्य में उनका सपना अपने गाँव में

एक कॉलेज शुरू करने का भी है। जल्द ही ये कॉलेज खुल सके इसकी वे तैयारी कर रहे हैं। हरेकाला मात्र पद्म श्री पुरस्कार प्राप्त व्यक्तित्व नहीं हैं, ये छोटे वर्ग के अनगिनत सपनों के गुरूर हैं। इन व्यक्तित्वों के सपने किसी चमत्कार से नहीं, निश्छल और निःस्वार्थ भाव से की गई सेवा और संकल्प से पूर्ण होते हैं।

राष्ट्रपति भवन में पद्म श्री पुरस्कार के लिए एक और व्यक्तित्व उपस्थित थीं। वे बैंगनी रंग की साड़ी पहने हुए, बालों में गजरा, माथे पर गहरी लाल बिंदी लगाए हुए थीं। ये थीं, कर्नाटक की ट्रांसजेंडर लोक नृत्यांगना मंजम्मा जोगती। मंजम्मा जोगती को पद्म श्री का ये सम्मान लोक–नृत्य कला में उनके योगदान के लिए दिया गया है।

यह तो हम सभी जानते हैं कि कुदरत ने एक ऐसी मानव कृति बनाई है, जिसे पौराणिक काल से किन्नर कहा जाता है। महाभारत काल में शिखंडी इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण हैं। परंतु कहना न होगा हमारे समाज ने न तो उस काल में और न ही वर्तमान में इनको सामान्य इंसान का दर्जा दिया है। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने कुछ वर्ष पूर्व इस समुदाय को थर्ड जेंडर की मान्यता देकर श्रेष्ठ कार्य किया है। परन्तु शायद ही कभी हमारे समाज को उस आघात की पीड़ा और दर्द का अहसास होता है जिससे ट्रांसजेंडर समुदाय गुज़रता है। इनका दर्द इतना गहरा है कि इसे शब्दों में बयां नहीं किया जा सकता। इनके बारे में कुछ कहना इनके गहरे ज़ख़्मों को कुरेदने जैसा है, वह भी ऐसे ज़ख़्मों को जो कुदरत ने दिए हैं और जिनके लिए आज तक कोई मरहम बना ही नहीं है। ट्रांसजेंडर का जीवन इतना संवेदनशील होता है, इतना गहरा होता है कि दर्द की इस गहराई को मापा नहीं जा सकता, या यूं कहिए इनके जीवन को समझने के लिए बहुत गहराई में उतरना होगा। मंजम्मा का जन्म 50 के दशक में कर्नाटक के बेल्लारी ज़िले में हुआ था। उनका नाम मंजूनाथ रखा गया था। मंजम्मा का मंजूनाथ से मंजम्मा तक का सफ़र बहुत दुखदायी रहा है। पंद्रह वर्ष की आयु

में जब मंजम्मा के माता–पिता को पता चला की उनका बेटा किन्नर है तो वे उसे हॉस्पेट स्थित मंदिर में जोगप्पा अनुष्ठान करवाने के लिए ले गए। इस अनुष्ठान में भक्त का देवी या देवता के साथ विवाह कर दिया जाता है। अनुष्ठान के बाद उसको पहनने के लिए लड़कियों के कपड़े, चूड़ियां, मंगलसूत्र आदि देकर मंजूनाथ से मंजम्मा जोगती बना दिया गया और उसके बाद उसको कभी भी घर लौटने की अनुमति नहीं मिली। इसके बाद इस छोटे से पंद्रह वर्ष के बच्चे की ज़िंदगी दुख के सागर में डूबती चली गई। उस बच्चे ने साड़ी लपेटकर सड़कों पर भीख मांगना शुरू कर दिया। लोग उसे देखकर अपनी गाड़ियों के शीशे चढ़ा लेते। उस बच्चे को कई–कई दिनों तक भूखे पेट सोना पड़ता। पर कहा जाता हैं न, ईश्वर कभी इतना निष्ठुर या निर्दयी नहीं हो सकता। वह एक रास्ता बंद करता है तो दूसरा खोल भी देता है। ऐसे ही आशा की किरण बिखेरता हुआ मंजम्मा के लिए भी एक द्वार खुला। उनकी ज़िंदगी में लोक नृत्य का पर्दापण हुआ। मंजम्मा की कल्लवा जोगती, उनके गुरूदेव से भेंट हुई और मंजम्मा उनसे जोगती नृत्य सीखने लगी। जोगती नृत्य जोग्गपा लोगों का लोक नृत्य है। जो महिलाएं ये नृत्य करती हैं वे आमतौर पर ट्रांस विमेन होती हैं। मंजम्मा अपनी मेहनत और लगन से आज जोगती नृत्य की अनमोल पहचान बन गईं हैं। जोगती नृत्य अब मंजम्मा के नाम से जाना जाता है।

इसी तरह पद्मश्री प्राप्त करने वाले एक और व्यक्तित्व भी व्हील चेयर पर राष्ट्रपति भवन पहुँचे हुए थे। बहुत ही साधारण से लिबास में अति साधारण व्यक्तित्व। सफ़ेद कुर्ता पाजामा पहने और आँखों में आत्मविश्वास की एक चमक लिए पूर्ण आत्मविश्वास से भरा व्हील चेयर पर बैठा यह व्यक्ति उस भीड़ में अपनी अलग पहचान बनाए हुए था। इनके बारे में भी मैंने जब उत्सुकतावश जो जाना वह किसी दिल दहलाने वाली घटना से कम न था।

इस शख़्सियत ने समाज में रहकर समाज, धर्म, जाति इत्यादि की नकारात्मक सोच रखने वाले लोगों की ऐसी सोच से उपर उठकर और समाज से अलग हटकर जो कार्य किया है, वह निश्चित रूप से वही व्यक्ति कर सकता है जो निर्भय हो, निडर हो और बुलंद हौसले रखता हो।

जैसे भीगा हुआ आदमी बारिश से नहीं डरता, ऐसे ही यह व्यक्ति बिना किसी की परवाह किए अपने कर्म में निष्ठा और लगन से लगा रहा।

यहाँ मैं बात करने जा रही हूँ, अयोध्या के रहने वाले 85 वर्षीय मोहम्मद शरीफ़ की जिनको सभी शरीफ़ चाचा के नाम से जानते हैं। शरीफ़ चाचा को माननीय राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद के करकमलों से जब पद्म श्री सम्मान से नवाज़ा गया तब उनके लिए यह किसी सपने से कम न था। मोहम्मद शरीफ़ ने वर्ष 1993 में अपने बेटे का अंतिम संस्कार न कर पाने से आहत होकर यह तय किया कि अब कोई भी लावारिस पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार वह स्वयं करेंगे। लोगों की मदद से कुछ पैसा इकट्ठा कर वे इस काम में जुट गए। वे पिछले 25 वर्ष से यह कार्य कर रहे हैं।

इस दौरान उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। स्रोतों से मुझे जो ज्ञात हुआ उसके अनुसार दरअसल मोहम्मद शरीफ़ के 28 वर्षीय बेटे की सुल्तानपुर की एक ट्रेन में हत्या कर दी गई थी क्योंकि वो किसी मजबूर का सम्मान बचाना चाहता था। हत्या के बाद मोहम्मद शरीफ़ के बेटे को रेल की पटरियों के किनारे फेंक दिया गया और लोगों ने लावारिस समझकर उसका अंतिम संस्कार कर दिया। हालाँकि बाद में पुलिस ने सक्रियता दिखाते हुए इनके बेटे की शर्ट के कॉलर के नीचे लगे

हुए स्टीकर से मो. शरीफ़ को खोजा था और उनके घर पहुँची थी। इस घटना से आहत होकर मो. शरीफ़ ने तय कर लिया कि वे किसी भी लावारिस पार्थिव शरीर का उनके धर्मों के अनुसार संस्कार करेंगे। अब तक वे 5 हज़ार से ज़्यादा ऐसे पार्थिव शरीरों का उनके धर्मानुसार संस्कार कर चुके हैं।

देश के ये अनमोल रत्न हर पीढ़ी के लिए आशीष हैं। इन महान विभूतियों के अपने क्षेत्र में निःस्वार्थ भाव से किए गए श्रेष्ठ कार्य और अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए इनकी संघर्ष यात्रा को मात्र कुछ पन्नों में समेटना संभव नहीं है।

इन व्यक्तित्वों के बारे में जानकर मुझे कवि सोहनलाल द्विवेदी की वे पंक्तियाँ जो मेरी बेहद पसंदीदा पंक्तियाँ हैं, याद आ रहीं हैं :

कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।
लहरों से हारकर नौका पार नहीं होती...

ई-मेल : vashishtchetna@gmail.com

स्वतन्त्रता की गाथा कहता एक गुमनाम गाँव

डॉ. चेतन आनन्द

भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की चिंगारी भले ही 165 साल पहले मेरठ से भड़की हो, लेकिन ये कम ही लोग जानते होंगे कि हापुड़ तहसील भी स्वतन्त्रता संग्राम में कम नहीं थी और यह कभी क्रान्तिकारियों का गढ़ रही थी। फिरंगियों ने यहाँ सबसे ज़्यादा क़हर बरपाया था और एक नहीं अनेक क्रान्तिकारियों को कम से कम 20 पेड़ों पर लटका–लटकाकर फाँसी दी थी। आज भी हापुड़ के रामलीला मैदान के मुख्य द्वार के बाहर शहीद स्तम्भ बना है और वह पीपल का पेड़ भी निशानी के तौर पर आज भी मौजूद है, जिस पर लोगों को फाँसी पर लटकाया गया था। मालूम हो कि हापुड़ पहले, गाज़ियाबाद ज़िले का एक प्रमुख नगर था। आज यह अलग ज़िला बन गया है। इसे डोर के राजा हरिदत्त ने दसवीं सदी में बसाया था। इसका मूलनाम हरिपुरा था, जो आज हापुड़ के नाम से जाना जाता है। गज़ेटियर ऑफ़ इंडिया, मेरठ के पृष्ठ 31 में मिले उल्लेख के अनुसार 408 हिजरी यानी सन् 1017 ईसवी में महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण के समय हरिदत्त इस क्षेत्र का राजा था। हापुड़ के नामकरण के बारे में अन्य विद्वानों की अलग–अलग राय है। प्रसिद्ध भाषा विज्ञान शास्त्री व हापुड़ निवासी डॉ. तिलक सिंह के मुताबिक महाभारत में 'हापुड़' शब्द का इस्तेमाल बरगद व पीपल के पेड़ों के झुंड के लिए हुआ है। हापुड़ क्षेत्र भी पहले बरगद व पीपल के पेड़ों से आच्छादित था, इसलिए इस क्षेत्र का नाम हापुड़ हुआ। कुछ लोग हापुड़ का नामकरण राजा हरिश्चंद्र के साथ जोड़ते हैं। उनकी मान्यता है कि इसे राजा हरिश्चंद्र ने बसाया था, लेकिन अधिकांश बौद्धिक

समाज इसे मान्यता नहीं देता और राजा हरिदत्त या फिर हापुड़ शब्द से हापुड़ की संभावना को सही बताता है। यूँ तो गज़ेटियर ऑफ़ इंडिया में हापुड़ नगर का ज़्यादा उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन हापुड़ नगर में आज भी यह प्रचलित है कि यहाँ नामी क्रान्तिकारी आकर छिपते थे, गुप्त बैठकें करते थे और घर–घर अख़बार बाँट–बाँटकर क्रान्ति की ज्वाला को जन्म दिया करते थे। प्रचलित मान्यता तो यहाँ तक है कि भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की योजना हापुड़ में ही बनी और इसे मेरठ में मंगल पाँडे के माध्यम से अमली जामा पहनाया गया। महात्मा गाँधी, सरोजिनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचंद्र बोस के अलावा अनेक क्रान्तिकारी यहाँ आते रहते थे और गोपनीय बैठकों में हिस्सा लेते थे। बताते हैं कि 10 मई 1857 को फिरंगियों से विद्रोह

करने के बाद काली पलटन धौलाना, डासना, हापुड़, असौड़ा में आकर छिपी थी और धौलाना के राजपूतों की मदद से दिल्ली में फिरंगियों का यूनियन जैक झंडा फाड़कर केसरिया पगड़ी फहरायी थी। इसी घटना से ब्रिटिश हुकूमत कुपित हुई और उसने धौलाना, डासना, पिलखुवा व हापुड़ नगर ज़ब्त कर लिया। धौलाना, डासना व पिलखुवा में क्रान्तिकारियों को चुन–चुनकर फाँसी दी गई तो हापुड़ में सबसे ज़्यादा क़हर बरपाया गया। जानकारी मिलती है कि हापुड़ नगर के लगभग 20 पेड़ों पर क्रान्तिकारियों को सरेआम लटकाकर फाँसी दे दी गई। हापुड़ के रामलीला मैदान के मुख्य द्वार के दायीं तरफ आज भी वह पुराना पीपल का पेड़ मौजूद है। हापुड़ शहर की जनता ने प्रयास करके वहाँ एक शहीद स्तम्भ स्थापित किया है। इसके अलावा तहसील चौराहे पर एक बरगद का पेड़, पोस्ट ऑफ़िस के पास पीपल का पेड़ और ऐसे अनेक स्थान रहे जहाँ क्रान्तिकारियों को चुन–चुनकर फिरंगियों ने फाँसी पर लटकाकर मौत के घाट उतारा। आज गज़ेटियर ऑफ़ इंडिया में यह उल्लेख नहीं मिलता कि कितने और किन–किन लोगों को फाँसी दी गई थी, लेकिन मरने वालों की संख्या दर्जनों बताई जाती है। शहर के 19 स्थानों से पेड़ काटे जा चुके हैं और निशानी के तौर पर एक ही पीपल का पेड़ बचा है। प्रसिद्ध लेखक आचार्य चतुरसेन की पुस्तक 'सोना और ख़ून' के भाग दो में लिखा है कि चौधरी ज़बरदस्त ख़ाँ और चौधरी उल्फ़त ख़ाँ हापुड़ के पुराने नवाब हुआ करते थे। कुपित हुए फिरंगियों ने उनसे उनकी ज़मींदारी छीन ली थी और उन्हें फाँसी देकर मार डाला था। ये दोनों नाम विवादित माने जा रहे हैं, लेकिन दूसरी ओर एक विशेष बिरादरी ने आचार्य चतुरसेन द्वारा लिखी गई बात को मान्यता देते हुए गढ़ गेट पर दोनों नवाबों की एक मज़ार भी बना दी है। रामलीला मैदान के पीपल के पेड़ पर जिन्हें फाँसी दी गई, उनमें धौलाना के चार अनाम राजपूत भी बताए जाते हैं। उनके नाम आज तक कोई जान नहीं पाया

है। हाँ, क्रान्तिकारियों में कांग्रेस के ज़ियाउल हक़ का उल्लेख न होगा तो बात बेमानी होगी। पत्रकार आशुतोष आज़ाद बताते हैं ज़ियाउल हक़ ऐसे क्रान्तिकारी थे, जो ब्रिटिश हुकूमत के सरमाएदारों के फ़र्ज़ी हस्ताक्षर करने में माहिर थे और उनके हस्ताक्षर बना बनाकर फिरंगियों को भड़काने का काम करते थे। बताया जाता है कि एक ब्रिटिश अधिकारी के हाथ काँपते थे और उसके दस्तख़त करने में ज़ियाउल हक़ असफल हो रहे थे। उन्होंने ऐसे में हार नहीं मानी और रात में घर की छत पर पानी से भरा एक ड्रम रखवा दिया। मौसम सर्दियों का था, इसलिए सुबह तक पानी एकदम बर्फ जैसा ठंडा हो गया। कहते हैं कि उस पानी में बैठकर उन्होंने उस फिरंगी अधिकारी के काँपते हस्ताक्षर करने में अदम्य कौशल दिखाया और पूर्ण सफलता प्राप्त की।

हापुड़ में स्वतंत्रता सेनानी कैलाश आज़ाद हुआ करते थे, उन्होंने अपने अन्य साथियों कैलाशचंद्र मित्तल, लीलाधर शर्मा, विशारद, अम्बा प्रसाद गर्ग आदि के साथ मिलकर उत्तर प्रदेश नागरिक पंचायत संस्था के माध्यम से वर्ष 1974 में रामलीला मैदान में पहला शहीद मेला आयोजित किया, जिसमें तत्कालीन ज़िलाधिकारी भोलानाथ तिवारी ने शिरकत की। उन्हीं के सुझाव पर वर्ष 1975 में स्वाधीनता संग्राम शहीद स्मारक समिति का गठन किया गया और पीपल के ऐतिहासिक वृक्ष के पास शहीद स्तम्भ की स्थापना की। तब से हर वर्ष 10 मई से 10 जून तक यहाँ शहीद मेले का आयोजन हो रहा है।

ई-मेल : av.chetan2007@gmail.com

संगीत की दुनिया का एक गुमनाम सितारा : पं. पन्नालाल घोष

डॉ. श्याम रस्तोगी

श्रीहरकुमार घोष के पौत्र एवं श्री अक्षय कुमार के पुत्र पन्नालाल का जन्म ई. 1911 (1318 बंगाब्द) पूर्वी बंगाल के बेरिशाल नामक शहर में हुआ था। बाल्यकाल से ही आप दृढ़संकल्पी, परिश्रमी, व्यायामी तथा प्रखर बुद्धि के थे। साथ ही आपको लाठी चलाने और कुश्ती लड़ने का भी शौक़ था।

किशोरावस्था में आपको व्यायाम करने के साथ ही प्राणायाम तथा अध्यात्म के प्रति रुझान हुआ। इसी भक्ति के कारण ही एक दिन आपको नदी में एक बाँसुरी मिली तथा आपने उसे उठाते हुए ही फूँकना प्रारम्भ कर दिया।

श्री पन्नालाल जी के घर का वातावरण सांगीतिक था। आपके पिता सितार वादक थे। माता के कण्ठ में स्वर माधुर्य था, पितामह पखावज में पारंगत थे। काका शास्त्रीय संगीत के अनुरागी थे। मामा भी गायन–वादन में रुचि रखते थे। आपके अनुज श्री निखिल घोष विख्यात तबला वादक हुए। विधाता ने आपका बाँसुरी वादक ही बनना निश्चित किया था। अतः एक बार आप अपने किसी शिक्षक की मृत्यु पर दाह–संस्कार के लिए श्मशान गए थे। वहाँ एक साधु ने आपको बाँसुरी उपहार स्वरूप दी। यहीं से आपने अब बाँसुरी वादन करने का निश्चय किया। इधर आपका मन पढ़ाई में कम और व्यायाम कुश्ती में ज्यादा लगता था। आपके घनिष्ठ मित्रों में से थे– श्री अनिल बिस्वास एक घनिष्ठ मित्र थे।

कुछ समय बाद आपको कोलकाता भेज दिया गया। वहाँ आप अपने साले साहब श्री ललित चन्द्र राय के घर पर निवास करते थे। ललित जी ने आपके लिए बॉक्सिंग तथा व्यायाम शिक्षक की भी व्यवस्था कर दी थी। वहीं आपको ट्यूबवेल लगाने का ठेका भी मिला और साथ में दस रूपये मासिक वेतन। इस नौकरी के लिए आपको संथाल में रहना पड़ा। वहीं आप संथालियों के नृत्य–संगीत के

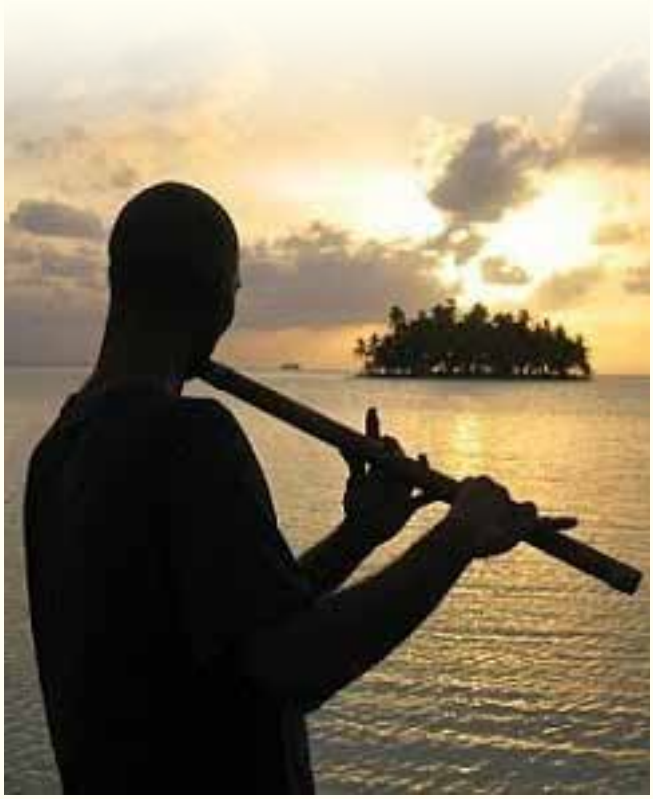

साथ–साथ बाँसुरी वादन भी सुना करते थे तथा वे भी आपके बाँसुरी वादन को पसन्द करते थे। आप पुनः कोलकाता वापस आ गए। यहीं आप और अनिल बिस्वास संघर्षशील रहे। आप दोनों ने यहाँ बड़े–बड़े संगीत विद्वानों के कार्यक्रमों को सुना तथा श्री पन्नालाल जी को श्री तारापद चक्रवर्ती का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ। आपको 'प्रवासी' पत्रिका के कार्यालय में नौकरी मिल गयी। इसी बीच श्री अनिल बिस्वास ने आपसे हिन्दुस्तान रिकार्डिंग के एक गीत में बाँसुरी बजाने का आग्रह किया। संघर्षशील मित्र बन्धुओं के जीवन में यह एक नया मोड़ था।

कुछ समय बाद श्री रत्नेश्वर मुखोपाध्याय के सहयोग से आपको रेडियो में गाने के साथ बाँसुरी संगीत का भी अवसर प्राप्त हुआ। इसी समय आपकी मुलाक़ात 'पातालपुरी' फ़िल्म के संगीत–रचनाकार क़ाज़ी साहब से हुई। क़ाज़ी साहब ने आपको अपने गीतों में बाँसुरी वादन का अवसर तो दिया, साथ में उनसे भी आपने कुछ राग–रागनी सीखी। इस समय आपकी आयु मात्र 23 वर्ष की थी। इसी अल्पायु में आपने रेडियो, रिकॉर्डिंग तथा छायाचित्र के प्रारम्भिक अनुभवों को प्राप्त किया। शनैः शनैः आपने 'हिन्दुस्तान रिकॉर्डिंग' के अतिरिक्त 'कोलंबिया रिकॉर्डिंग' में भी अपनी कला का परिचय दिया और कई संगीत विद्वानों से मिलने का सुअवसर प्राप्त किया। इसी क्रम में आपकी मुलाक़ात भारत–विख्यात–संगीत–परिचालक श्री रायचन्द्र बोराल से हुई। श्री रायचन्द्र ने 70 रूपये प्रतिमाह के वेतन से आपको अपनी कम्पनी में नियुक्त किया। उस समय प्रथम पार्श्व–गायन युक्त फ़िल्म 'भाग्यचक्र' में प्रथम बार आपने काम किया और इसी फ़िल्म की पार्श्व गायिका सुश्री पारुल घोष से आपकी मुलाक़ात हुई जिनसे 1934 में आपका विवाह हुआ। श्री रायचन्द्र बोराल के ही सहयोग से आपने रेडियो के 'महालया', 'शिवरात्रि', 'श्रीराधा' तथा 'झूलन' इत्यादि कार्यक्रमों में सहभागिता की। श्री रामचन्द्र के सहयोगी श्री पंकज मलिक, सुश्री काननदेवी इत्यादि

कलाकारों के साथ सहयोग देने के अतिरिक्त आप तथा पं. तिमिर बरन एकल वादन भी प्रस्तुत करते थे।

वर्ष 1934 में आपने 'ऑल बंगाल म्यूजिक कान्फ्रेंस' की प्रतियोगिता में 'राग–पुरिया' का वादन किया तथा इस प्रतियोगिता के प्रधान निर्णायक उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ ने आपको प्रथम स्थान दिया। इसके बाद बिना किसी गुरु की तालीम के आपने कई संगीत समारोहों में एकल बांसुरी का वादन किया। आप रेडियो तथा अन्य कार्यक्रमों में बड़े–बड़े गायक–वादकों का कार्यक्रम सुनते, तथा बाँसुरी पर उन मैहर घराने के प्रवर्तक तथा साधु प्रवृत्ति के कलाकार उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ साहब से आपकी पं. रविशंकर जी के ही घर पर मुलाक़ात हुई। आपने उस्ताद जी से संगीत सिखाने की विनती की और उस्ताद जी भी तैयार हो गए। इस संयोग का वर्ष था– 1947। इसके बाद आपने कई राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर एकल वादन प्रस्तुत किया और 'पन्ना लाल' से पं. पन्ना लाल घोष के रूप में स्थापित हो गए। साथ ही आपने 'आन्दोलन' तथा 'परिणिता' इत्यादि फ़िल्म में भी संगीत–निर्देशक का सफल कार्य किया। आपका कोमल मन फ़िल्मी जगत के तड़क–भड़क भरे वातावरण को स्वीकार न कर सका और तत्कालीन दूरसंचार मंत्री डॉ. केसकर के निमंत्रण पर 'नैशनल ऑर्केस्ट्रा', दिल्ली में ऑर्केस्ट्रा कन्डक्टर (परिचालक) पद

को स्वीकार कर लिया। आपने नैशनल ऑर्केस्ट्रा में भी कई अभूतपूर्व,वाद्यवृंद की ईन तकनीकों का भी विकास किया, साथ ही वाद्यवृंद की कई समस्याओं पर सफलता पाई। इसके अतिरिक्त आपने भारतीय वाद्यवृंद को एक नवीन दिशा भी प्रदान की। ऑर्केस्ट्रा का अपरिहार्य अंग था–बेस इन्स्ट्रूमेन्ट जो कि विदेशी था, फिर भी राष्ट्रीय ऑर्केस्ट्रा बनाने के लिए शुरू में विदेशी वाद्य के बदले देसी वाद्य का प्रयोग वांछनीय है। विदेशी वाद्य के समतुल्य देसी वाद्यों का पुनः आविष्कार करना या उन्हें नवीन रूप देना प्रयोजनीय है। प्राचीन संगीत–शास्त्र का अध्ययन कर श्री पन्नालाल ने इन बातों का अनुभव किया, इतना ही नहीं उन्होंने यह भी समझा कि विशेष आवश्यकता पड़ने पर प्राचीन वाद्यों में परिवर्तन या उनका संस्कार साधन किया जाए, जिससे वे आज के ऑर्केस्ट्रा के लिए उपयुक्त बन सकें।

पं. पन्नालाल घोष उन महान व्यक्तियों में से एक हैं जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय योगदान दिया साथ ही बंगाल के समकालीन संगीत और कविता में पुनर्जागरण का नेतृत्व किया।

पं. पन्नालाल घोष द्वारा कुछ नवीन रागों की रचना की गई जिनमें चन्द्र मॉली, दीपावली जयन्त, कुमारी, नूपुर – घवानी, पंचवटी, रत्ना – पुष्पिका, शुक्लापलासी आदि शामिल हैं।

पं. पन्नालाल घोष को 'बाँसुरी का मसीहा', नई बाँसुरी का जन्मदाता और भारतीय शास्त्रीय संगीत का युगपुरुष कहा जाता है।

पं. पन्नालाल घोष जी का देहान्त सन् 20 अप्रैल 1960 को हुआ और इस तरह संगीत जगत का एक गुमनाम सितारा आकाश में विलीन हो गया।

ई-मेल : jishyam83@gmail.com

अग्नियुग के अकीर्तित विप्लवी : बारिन्दर कुमार घोष

अरविंद शारदा

भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटिश विरोधी स्वाधीनता आन्दोलन में एक स्वनाम धन्य व्यक्तित्व और अग्नियुग के विप्लवी थे बारिन्दर कुमार घोष। ये वो समय था जब कि बंगाल के घर–घर में स्वाधीनता संग्राम की चिंगारी सुलग चुकी थी। बारिन्दर कुमार घोष या बारिन घोष महान क्रान्तिकारी श्री अरविंद घोष के छोटे भाई थे।

उनका जन्म लंदन के पास क्रायडान में 5 जनवरी 1880 में हुआ था। उन्होंने देवघर में अपनी प्रारम्भिक पढ़ाई की और प्रवेश परीक्षा पास कर 1901 में पटना कॉलेज में दाख़िला लिया और उसके बाद बड़ौदा से सैनिक प्रशिक्षण लिया। इससे ज़्यादा उनकी शिक्षा आगे नहीं बढ़ी। इस समय वे अपने बड़े भाई अरविन्द घोष से प्रभावित हुए और स्वाधीनता आन्दोलन में कूदने का निर्णय लिया।

विप्लवी जतीन्द्रनाथ बनर्जी जो कालान्तर में वाघा जतीन के नाम से विख्यात हुए, के साथ मिलकर आपने एक विप्लवी संगठन की शुरूआत की। इसका नाम दिया गया 'युगान्तर'। उसका दूसरा कार्यालय ढ़ाका में खोला गया और नाम दिया गया अनुशीलन समिति, जहाँ इसकी लगभग 500 शाखाएँ थीं। दोनों जगह अधिकांश सदस्य स्कूल और कॉलेज के छात्र थे। यहाँ सदस्यों को हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। भारत वर्ष की धरती से अँग्रेज़ों को निकालने के लिए अहिंसा को अस्वीकार कर शस्त्र से लड़ने के आह्वान ने युवावर्ग को बहुत आकर्षित किया।

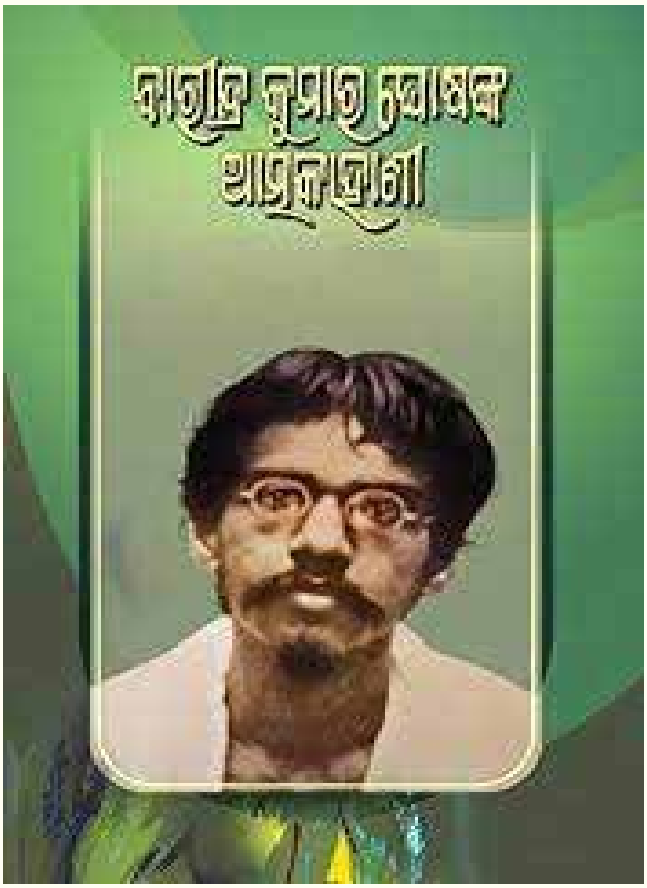

अनुशीलन समिति लगभग दस वर्षों तक सक्रिय रही। स्वामी विवेकानंद के विचार लेखन और व्याख्यानों को इस समिति ने प्रेरणा का स्रोत माना, साथ ही साथ वे बंकिम चन्द चटर्जी के 'आनन्द मठ' से प्रभावित थे। इस समिति ने 1905 में 'भवानी मंदिर' प्रकाशित की। ये वो समय था जब कि अँग्रेज़ों ने बंगाल का विभाजन कर दिया था।

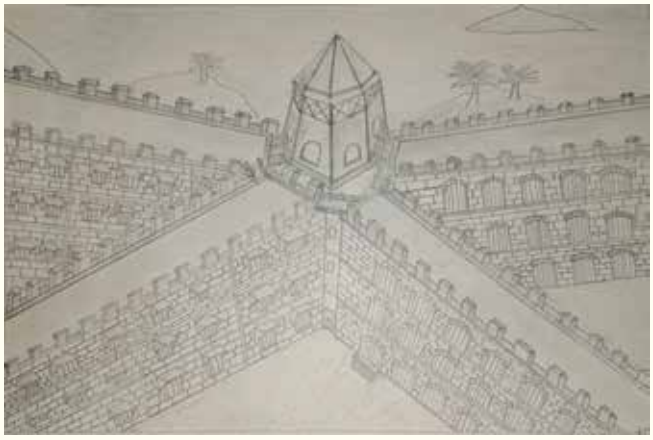

सेल्युलर जेल आरेख : लोकेश कुमार

सन् 1906 में बारिन घोष ने बंगाली भाषा में 'युगान्तर' नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। उनके विप्लवी कर्मकाण्ड की प्रमुख घटना थी मानकतल्ला बम काण्ड। यह बात सन् 1908 की है। इस साल महान क्रान्तिकारी खुदीराम बोस की किंग्स फ़ोर्ड हत्याकाण्ड में गिरफ़्तारी हुई। इसी सिलसिले में बारिन घोष, अरविन्द घोष एवं कई अन्य क्रान्तिकारियों की भी गिरफ़्तारी हुई। यह मामला अलीपुर बम काण्ड के नाम से चला और उसमें बारिन एवं उल्लासकर दत्त को मृत्युदण्ड दिया गया। बाद में देशबन्धु चित्तरंजन दास की चेष्टा से इसे आजीवन कारावास में बदलकर उन्हें अण्डमान की सेल्यूलर जेल में भेज दिया गया।

इन्होंने अपने काराग्रह में बिताए समय को स्मृति कथा के रूप में "द टेल ऑफ़ माई एक्साइल : 12 इयर्स इन अण्डमान" नाम से प्रकाशित किया। ये उस समय की जीवन्त कहानी मानी जाती है। उस समय सेल्यूलर जेल त्रास यातना, भय या विभीषिका का एक और नाम माना जाता था। छोटी–छोटी कोठरी में पुलिस की सख़्त निगरानी में क्रान्तिकारियों और स्वाधीनता सेनानियों को रखा जाता था। सेल्यूलर जेल को अँग्रेज़ों ने आतंक का पर्याय बना डाला था और उनका सबसे बड़ा उद्देश्य था भारतवासियों के मन में क्रान्तिकारियों की गौरव गाथाओं को हमेशा के लिए मिटा देना व भय पैदा कर देना जिससे कोई भी अँग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ विद्रोह करने की न सोचे। यहाँ पर जो बंदीजन थे उन्हें किस तरह प्रताड़ित किया जाता था क्या क्या यातना दी जाती थीं, उन्होंने अपने स्मृति ग्रंथ में विस्तार से लिखा है। कुछ बातें इस तरह की हैं– केवल रोटी और पानी खाने में मिलता था, अगर भाग्य अच्छा हो तो कभी–कभी एक सब्ज़ी मिल जाती थी। हर बंदी को 20–25 किलो नारियल तेल निकालने का आदेश था। काम पूरा न होने पर चाबुक़ की मार और डंडे बरसाना आम बात थी। इसके अलावा रस्सी से लटका कर मारना तो नसीब में था ही। 12 वर्षों की यातना के बाद वो 1920 में वहाँ से रिहा कर दिए गए।

1920 में जेल से मुक्त होने के बाद वे वापस कोलकाता आ गए और पत्रकारिता शुरू की। लेकिन कुछ ही समय बाद पत्रकारिता छोड़कर एक आश्रम का निर्माण किया। 1933 में वे कोलकाता छोड़कर पॉन्डीचेरी आ गए और वहां ऑरोविन्दो आश्रम में कुछ वर्ष रह कर शास्त्रों का अध्ययन व साधना की। वे अक्सर कहते थे, साधक होने का अर्थ है कि हम अपने जीवन की आवश्यकताओं को जानते हैं, अपनी त्रुटियों को जानते हैं। अपने जीवन की मौलिक माँग या जो आवश्यकता है उसकी पूर्ति के लिए तत्पर रहें और अपनी भूल को मिटाने के लिए तत्पर रहें। यह साधक का रूप या चित्र है। ये जो जीवन में चाहिए उसके लिये पुरुषार्थ करना यह साधक की परिभाषा है। कोलकाता में सन् 1937 में उन्होंने अँग्रेज़ी साप्ताहिकी "द डॉन ऑफ़ इंडिया" की शुरूआत की। इसी के साथ–साथ वो 'द स्टेट्समैन' समाचार पत्र से भी जुड़ गए। स्वाधीनता के बाद वर्ष 1950 में वे दैनिक 'वासुमती' के सम्पादक बने। बंगाल में क्रान्तिकारी विचारधारा की मशाल जलाने का काम जिन्होंने किया उनमें बारिन घोष का नाम सदैव आलौकित रहेगा।

ई-मेल : arvindsharda17@gmail.com

आज़ादी की रणभूमि का एक गुमनाम नन्हा योद्धा : बाजी राउत

अरुण कुमार मलिक

एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा गाँव है उड़ीसा का भुवन। ये गाँव ब्राह्मणी नदी के तट पर स्थित है। भुवन गाँव के पास है नीलकंठपुर गाँव। नीलकंठपुर गाँव के वासी ग़रीब मज़दूर और किसान थे, परन्तु मातृभूमि के प्रति उनके प्रेम और देशभक्ति को भुलाया नहीं जा सकता।

इसी नीलकंठपुर गाँव में एक ग़रीब किसान रहता था, हरिहर राउत, उसकी पत्नी रानी और दो पुत्र। बड़ा पुत्र 15 वर्ष का और छोटा 12 वर्ष का बाजी, साहसी, वीर अन्याय बर्दाश्त नहीं करने वाला। हरिहर का कम उम्र में निधन हो गया। विधवा रानी पर दोनों बच्चों को पालने की ज़िम्मेदारी आ गई।

उस समय उस राज्य ढेंकानाल में बहुत अत्याचार और अंधा शासन था। वहाँ का राजा शंकर प्रताप सिंह देव, अँग्रेज़ों के आधीन हो, प्रजा पर और अत्याचार करने लगा। उसने फ़रमान जारी किया कि प्रत्येक घर से एक आदमी बँधुआ मज़दूरी करने के लिए राजा और अँग्रेज़ों के लिए बन रहे नए नगर में जाएगा, और जिस परिवार से कोई नहीं जाता था उस परिवार को अँग्रेज़ों और पुलिस द्वारा प्रताड़ित किया जाता। 1938 में नीलकंठ गाँव में दो–चार अँग्रेज़ और राजा के सिपाही, हरिहर राउत के घर आए और उसके घर से कोई बँधुआ मज़दूर क्यों नहीं गया, इस बात को लेकर रानी को बहुत अपमानित किया, उसे मारा–पीटा भी। ये सब छोटा बेटा बाजी राउत देख रहा था। उससे माँ का अपमान देखा नहीं गया और वो सिपाहियों से लड़ गया। छोटे से बच्चे का इतना साहस देख सिपाहियों को गुस्सा आया और उन्होंने उसे बुरी तरह मारा–पीटा। सिपाहियों के जाने के बाद माँ ने बाजी राउत को समझाने की कोशिश की लेकिन उसके तर्क के आगे माँ को चुप होना पड़ा। उसी दिन बाज़ी राउत ने अपने गाँव की महिलाओं की इज़्ज़त की रक्षा के लिए उस राजा के ख़िलाफ़ लड़ने की शपथ ली।

ऐसे वीर साहसी बालक बाजी राउत का जन्म 5 अक्तूबर 1926 को नीलकंठपुर गाँव में हुआ था। इसी वर्ष राजा शंकर प्रताप उस राज्य की गद्दी पर बैठे थे।

अपनी माँ के अपमान का बदला लेने की शपथ ले, बाजी गाँव–गाँव घूमा तो उसने जाना कि अन्य महिलाओं के साथ और भी अपमानजनक व्यवहार किया गया है और ये सब देखकर उसके मन में बदला लेने की इच्छा और प्रबल हो उठी।

उस समय गाँव में राजा और अँग्रेज़ों के अत्याचार के विरोध में जगह–जगह सभाएँ हो रही थीं, लोग भय में अपने घरों में छुपे थे। पर बाजी के कानों में एक ही नारा गूँज रहा था 'इंक्लाब ज़िन्दाबाद'। बाजी राउत राजा और अँग्रेज़ों के विद्रोह में आन्दोलन में शामिल होने लगा। जब गाँव का कोई भी आदमी प्रजामण्डल का सदस्य बन अँग्रेज़ों के खिलाफ लड़ने का साहस नहीं जुटा पा रहा था, तब 12 वर्ष का बालक बाजी राउत आगे आकर सदस्य बनने को तैयार हुआ। उसका साहस देख लोग अचम्भित

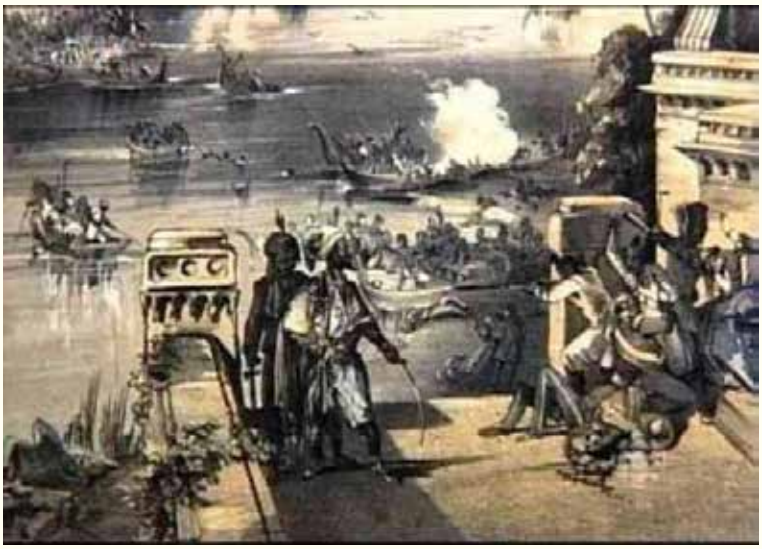

थे और उस छोटे बालक को आन्दोलन में शामिल करने के लिए मना कर रहे थे। परन्तु सभा के मुखिया महेश चन्द्र सुबाहु सिंह ने कहा कि बाजी राउत प्रजामण्डल की वानर सेना में शामिल हो सकता है। बाजी वानर सेना के सदस्य का कार्य बहुत अच्छे से निभाने लगा, वो राजा और अँग्रेज़ों की ख़बर लाकर प्रजामण्डल को देता था। 1938 के अगस्त माह में जोरन्दा में प्रजामण्डल की एक सभा बुलायी गई जिसमें वीर वैष्णव द्वारा चेतना संगीत गाया जा रहा था, बाजी राउत भी उनके साथ गाने लगा। बाजी राउत की मधुर आवाज़ में ये चेतना संगीत लोगों को बहुत प्रभावित कर रहा था, लोग उसकी तारीफ़ कर रहे थे।

नीलकंठपुर गाँव से ब्राह्मणी नदी के किनारे 10 किलोमीटर पर जेनापुर है। 1938 के सितंबर माह की एक तारीख़ को काँग्रेस समाजवादी की तरफ से 'जेनापुर' में एक किसान सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में लगभग 50,000 लोग शामिल हुए थे। सभा में बाजी राउत ने मंच पर खड़े होकर विप्लव संगीत गाया और साथ ही भाषण भी दिया। उसके गाने और भाषण को सुनकर लोग मुग्ध हो गए। जितनी भी सभाएँ होतीं बाजी राउत सभी में शामिल होता था। कटक के बालकृष्ण अपने प्रेस से 'कृषक पत्रिका' प्रकाशित करते थे जिसमें राजा और अँग्रेज़ों के विरोध में छपा होता था। ये पत्रिका प्रजा मण्डल की वानर सेना गाँव–गाँव के प्रत्येक घर पर पहुँचाती थी। इसका नेतृत्व बाजी राउत करता था।

11 सितंबर 1938 के दिन प्रजामण्डल के मुखिया को राजा ने गिरफ़्तार करवा लिया। इसके बाद आन्दोलन ने और उग्र रूप ले लिया। अपने मुखिया की मुक्ति के लिए 12 सितंबर को ढेंकानाल में दूर–दूर से लोग आकर इकट्ठा हुए। तेज़ बारिश होने के बावजूद लगभग 50,000 से भी ज़्यादा लोग इकट्ठा हो गए और राजा व अँग्रेज़ों के नए भवन को तोड़–फोड़ डाला। उस आन्दोलन में शामिल होने वाले लोग अपने परिवार वालों से ये बोलकर आए कि वो वापस आएँगे या नहीं पता नहीं, उनके वापस आने का इंतज़ार न करें। आन्दोलन में बाजी राउत लोगों को प्रोत्साहित कर रहा था, नारे लगाकर और विप्लव संगीत गाकर उनका हौसला बढ़ा रहा था। धीरे–धीरे वहाँ लोगों की संख्या बढ़ने लगी और वो राजा से अपने मुखिया की मुक्ति के लिए नारे लगाने लगे। उन्होंने राजा को चेतावनी दी कि अगर उनके मुखिया को मुक्त नहीं किया गया तो वे राजा के साम्राज्य को नष्ट कर देंगे। राजा के सिपाहियों ने आन्दोलनकारियों को समझाया पर वो नहीं माने। शाम होते ही राजा ने उन लोगों के ऊपर हाथी घोड़ा, लाठी, बन्दूक़ आदि से हमला करवा दिया। अचानक हुए हमले से डरकर लोग इधर–उधर भागने लगे। लेकिन कुछ लोगों ने अँग्रेज़ सिपाहियों पर पलटकर हमला किया, जिससे हाथी पर बैठा उनका सेनापति लॉर्ड क्रेफ़्री हाथी से नीचे गिर गया और घायल हो गया। इस संघर्ष के दौरान बाजी राउत भी घायल हो गया था लेकिन वो फिर भी डटा रहा, नारे लगाता रहा। आख़िर में प्रजामण्डल की जीत हुई।

राजा इस हार को बर्दाश्त नहीं कर पाया और उसने अँग्रेज़ों से मदद माँगी। मेजर बेजल गेट, राजा के अनुरोध पर वहाँ आया। मेजर आन्दोलन को ख़त्म करने और

लोगों का दमन करने वहाँ आया था। मेजर ने अँग्रेज़ी फ़ौज की और टोलियाँ उस राज्य में बुलाईं और मुक्त किए गए प्रजामण्डल के सदस्यों को फिर से गिरफ़्तार कर लिया और लोगों पर और अधिक अत्याचार करने लगा। वहाँ की पुलिस, अँग्रेज़ों के साथ मिलकर लोगों पर अत्याचार करने लगी। लोगों को लूटना, मारना–पीटना, घर में घुसकर महिलाओं को उठा ले जाना आदि। उनके अत्याचार की सीमा पार हो गई थी, वहाँ के लोग त्राहि–त्राहि कर रहे थे। लोगों ने फिर से इक्ट्ठा होकर आन्दोलन किया। उनका नारा था, 'मारेंगे, नहीं तो मरेंगे', पुलिस के साथ मुठभेड़ हुई और बहुत से लोग मारे गए। पुलिस दूसरे गाँव से होते हुए भुवन गाँव की तरफ पहुँच चुकी थी। अँग्रेज़ों ने देखा, अब वो कमज़ोर पड़ रहे हैं तो उन्होंने रात को नदी पार कर भागने की योजना बनाई। प्रजामण्डल को यह बात पता चली तो, उन्होंने बैठक बुलाई और ये तय किया कि नीलकंठपुर नदी घाट पर, पहरेदारी करनी होगी और अँग्रेज़ों को नदी पार करने से रोकना होगा। लेकिन सवाल ये था कि कौन करेगा पहरेदारी ? बाजी राउत ने आगे बढ़कर पहरेदारी करने की ज़िम्मेदारी ली, उसने कहा कि वो बच्चा है तो अँग्रेज़ कुछ नहीं करेंगे। सभी लोग बहुत ख़ुश हो गए और सभा में ये फ़ैसला लिया गया कि बाजी के साथ 2–4 लोग और जाएगे। बाजी अपने घर जाकर ख़ुशी से अपनी माँ को ये बताता है कि आज रात को पहरा देने की ज़िम्मेदारी उसे दी गई है। माँ चिन्तित हो जाती है और उसे मना करती है, गाँव वालों को भी डाँटती है, लेकिन बाजी माँ को मना लेता है। माँ आँख में आँसू लिए बाजी को विदा करती है।

बाजी के साथ नाव में हुरूसी प्रधान, नट मलिक, लक्ष्मण मलिक और गुरेई मलिक भी थे। इन लोगों की ज़िम्मेदारी थी कि अँग्रेज़ों की गतिविधियों पर नज़र रखें, उनको नदी पार न करने दें और गाँव के लोगों को सुरक्षित नदी पार करवाएँ। वे लोग नाव लेकर किनारे से थोड़ा अन्दर छुपे हुए थे। उस दिन ब्राह्मणी नदी उफान पर थी, बाढ़ का पानी बहुत ज़्यादा था। भोर होने के कुछ समय पहले ही अँग्रेज़ी फ़ौज गाँव के दलाल के साथ नदी के किनारे पहुँची। हज़ारों गाँव वालों को मार कर वे अपनी जान बचाने के लिए भाग रहे थे। गाँव के लोग उनका पीछा कर रहे थे। अँग्रेज़ों के आने पर बाजी राउत नाव को नदी में और अन्दर ले गया। सिपाही उसे चिल्लाकर बुलाने लगे कि नाव तट पर लाओ। बाजी ने अकेले खड़ा होकर उनको उत्तर दिया कि प्रजामण्डल का आदेश है कि तुम लोगों को नदी पार न करने दी जाए। सिपाहियों ने उसे गोली मारने की धमकी दी तो बाजी ज़ोर–ज़ोर से हँसने लगा, उसकी हँसी से नदी का किनारा गूँजने लगा। बाजी बोला तुम लोग अत्याचारी हो, इसी गाँव के होकर इसी गाँव के लोगों पर अत्याचार कर रहे हो, महिलाओं की इज़्ज़त लूट रहे हो। तुम लोग राक्षस हो, पशु हो। ये सब सुन राजा की फ़ौज के मजिस्ट्रेट विनय घोष ने सिपाहियों को गोली चलाने का आदेश दिया। सिपाही रवि स्वाई ने गोली चलाई। गोली बाजी राउत के सिर में लगी। गोली लगने से पहले उसने प्रजामण्डल की जय, भारत माता की जय कहा। गोली लगते ही उसका सिर फट गया और वो कटे पेड़ की तरह नाव में गिर गया। बाजी राउत शहीद हो गया। उग्र सिपाही ने एक गोली मारने के बाद नाव पर लगातार कई गोलियाँ चलाईं जिससे नाव पर सवार अन्य लोग भी मारे गए। तब तक प्रजामण्डल और गाँव वाले वहाँ आ गए। फ़ौज़ और उनके बीच देर तक लड़ाई हुई जिसमें प्रजामण्डल के कई नेता और गाँव वाले मारे गए।

12 वर्ष का नन्हा बाजी राउत जिस ब्राह्मणी नदी के किनारे खेलकर बड़ा हुआ, उसी की गोद में समा गया। भारत के सबसे कम उम्र के क्रान्तिकारी, स्वतन्त्रता सेनानी, गुमनाम नायक बाजी राउत के देश और मातृभूमि के लिए किए गए इस बलिदान को आज भी भुवन गाँव और पूरे उड़ीसा के लोग गर्व से याद करते हैं।

ई-मेल : arunnsd@gmail.com

स्वाधीनता आन्दोलन के अकीर्तित राष्ट्रनायक : दशरथ प्रसाद द्विवेदी

गोपेश्वर दत्त पांडे

भारत में जब 1780 ई. में जेम्स ऑगस्टस हिक्की ने पहला समाचार पत्र प्रकाशित किया होगा तो उसे मालूम नहीं होगा कि यही पहल आगे चलकर आन्दोलन का रूप ले लेगी और यह पहल अँग्रेज़ों के ख़िलाफ़ एक सशक्त हथियार बन जाएगा। भारत में पत्रकारिता ने इतना ज़ोर पकड़ा कि अँग्रेजों को बार–बार प्रेस पर प्रतिबंध के लिए क़ानून बनाना पड़ा। इसी कारण पहले समाचार पत्र 'द बंगाल गजट' को बाद में सरकार के प्रति आलोचनात्मक रवैया अपनाने के कारण अँग्रेज़ों ने इस पर प्रतिबंध लगा दिया। 'द सेंसरशिप ऑफ़ प्रेस ऐक्ट' 1799 ई. के द्वारा यह नियम बना दिया गया कि किसी भी समाचार पत्र के प्रकाशन के पूर्व सरकार के सचिव के पास भेजना होगा। अनुज्ञप्ति अधिनियम 1823 ई. के द्वारा यह नियम बनाया गया कि किसी भी भारतीय भाषा के समाचार पत्र के लिए प्रेस की स्थापना के लिए सरकार की पूर्व अनुमति आवश्यक है। 1835 ई. के प्रेस अधिनियम के द्वारा कुछ उदारता बरती गई, लेकिन जल्द ही 1857 ई. के अनुज्ञप्ति अधिनियम के द्वारा पुनः मुद्रणालय स्थापित करने और समाचार पत्रों के प्रकाशन के नियम कड़े कर दिए गए। सरकार को यहाँ तक अधिकार दे दिया गया कि वह किसी भी अनुज्ञप्ति को कभी भी रद्द कर सकती है या किसी भी पत्रिका, जर्नल या पुस्तक या अन्य प्रकाशित सामग्री पर प्रतिबंध लगा सकती है।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही नागरिक स्वतन्त्रताओं की रक्षा का मुद्दा, जिनमें प्रेस की स्वतंत्रता से ही नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षा का मुद्दा सबसे प्रमुख था, राष्ट्रवादियों के घोषणा पत्र में सबसे प्रमुख स्थान बनाए हुए था। 1824 ई. में राजा राममोहन राय ने उस अधिनियम की तीखी आलोचना की, जिसके द्वारा प्रेस पर प्रतिबंध लगाया गया। था। 1870 ई. से 1918 के मध्य राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भिक चरण कुछ प्रमुख मुद्दों पर केंद्रित रहा। इन मुद्दों में भारतीयों को राजनीतिक मूल्यों से अवगत करना, उनके मध्य शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना, राष्ट्रवादी विचारधारा का निर्माण अख़बार से जुड़ा था क्योंकि उनका मानना था कि–

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो

जब तोप मुक़ाबिल हो तो अख़बार निकालो

इसी भाव से प्रेरित होकर दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने गोरखुपर से 'स्वेदश' नामक हिंदी समाचार पत्र निकाला। इसकी ताक़त यह थी कि इस समाचारपत्र का 'विषय अंक' इतना प्रसिद्ध हुआ था कि अँग्रेज़ सरकार ने इसको ज़ब्त कर लिया था। 'विषय अंक' का संपादन प्रसिद्ध साहित्यकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने किया था। दशरथ प्रसाद द्विवेदी का जन्म 1891 ई. में गोरखपुर ज़िले में हुआ था। द्विवेदी जी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा कायस्थ पाठशाला और उच्च शिक्षा मूईर इंटर कॉलेज, इलाहाबाद से ली थी। गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' में वे सहायक भी रहे थे। वहीं उन्होंने स्वेदशी का पाठ पढ़ा था, जिसके लिए वह जीवन पर्यंत समर्पण भाव से कार्य करते रहे। उनके पत्र 'स्वदेश' के प्रथम पृष्ठ पर ही स्वराष्ट्र धर्म की भावना को जागृत करने वाली निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी रहती थीं–

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।

वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश
का प्यार नहीं।।

दशरथ प्रसाद द्विवेदी के बारे में यह प्रचलित है कि वे दरोग़ा की नौकरी की ट्रेनिंग के लिए मुरादाबाद जा रहे थे। लखनऊ से उन्हें ट्रेन बदलनी थी। वहीं पर गणेश शंकर विद्यार्थी की सभा हो रही थी। कहा जाता है कि वह गणेश शंकर विद्यार्थी के भाषण से इतना प्रभावित हुए कि दरोग़ा की ट्रेनिंग का विचार छोड़कर स्वाधीनता आन्दोलन में शामिल हो गए। 6 अप्रैल 1919 ई. से दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने 'स्वदेश' का प्रकाशन शुरू कर दिया। आज़ादी की लड़ाई में जन–जन तक स्वराज का संदेश पहुँचाने में सशक्त माध्यम बने इस पत्र के प्रत्येक पन्ने स्वाधीनता आन्दोलन की प्रेरणा बनते चले गए। स्वदेशी आन्दोलन से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने घर का नाम ही 'स्वदेश सदन' रख दिया। इसी घर से 'स्वदेश' समाचार पत्र का सारा काम होता था। उस समय के सभी प्रमुख साहित्यकारों जैसे– अयोध्या प्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', जयशंकर प्रसाद, निराला, प्रेमचंद आदि की रचनाएँ स्वेदश में प्रकाशित हुआ करती थीं। उनके आवास और 'स्वदेश' के दफ़्तर रहे 'स्वेदश सदन' में ये सामग्री आज भी उपलब्ध है।

चौरी–चौरा कांड के बाद अँग्रेजों ने जमकर दमन चक्र चलाया। दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने मोतीलाल नेहरू को चिट्ठी लिखी तथा अगले कार्यक्रम के बारे में पूछा। मोतीलाल नेहरू ने आन्दोलन जारी रखने का निर्देश दिया। दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने यही किया और आन्दोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। अँग्रेज़ों ने उन्हें पकड़ लिया, यातनाएँ दीं और जेल में डाल दिया। दशरथ प्रसाद द्विवेदी की प्रतिभा को इसी बात से समझा जा सकता है कि उन्हें 'प्रताप' में बुलाने के लिए सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी ने दशरथ प्रसाद द्विवेदी को हनुमान प्रसाद पोद्दार के माध्यम से चिट्ठी लिखी। इस चिट्ठी में विद्यार्थी जी ने दशरथ प्रसाद द्विवेदी के बारे में बहुत सारी बातें लिखीं थीं। 1916 ई से 1929 ई तक 'प्रताप' में पत्रकारिता के गुर सीखकर 'स्वदेश' को हिन्दी पत्रकारिता का प्रतिमान बना दिया। अँग्रेज़ों से लड़ते–भिड़ते यह 1919 ई. से 1938 ई. तक छपा। 'स्वेदश' पर विद्यार्थी जी की पत्रकारिता की छाप थी।

'स्वदेश' के विशेषांको की इतनी ज़्यादा लोकप्रियता होती थी कि प्रकाशित होते ही सारे अंक बिक जाया करते थे। आन्दोलनों को प्रेरणा देने वाले गीत, कविताएँ, संदेश और समाचारों को इसमें प्रकाशित किया जाता था। साथ ही क्रान्तिकारियों तक देश के शीर्ष नेतृत्व के संदेशों को भी इसके माध्यम से पहुँचाया जाता था। सरकारी नीतियों

की अलोचना और विरोध के कारण दशरथ प्रसाद द्विवेदी को अँग्रेज़ अधिकारी प्रताड़ित भी करते, पर दशरथ प्रसाद द्विवेदी सच्चे देश भक्त थे और कभी विचलित हुए बिना उन्होंने कई लेखों में लिखा था कि हम भारत वासियों को ताक़त और क्रूरता से कोई जीत नहीं सकता। वैदिक काल से लेकर इस समय तक कितने आक्रमणकारी आए और गए किसी के सामने न तो भारतवासी झुके, न ही हार मानी। अतः अँग्रेज़ों के सामने भी हमें झुकना नहीं है। इनको भी हम हराकर स्वाधीनता प्राप्त करेंगे।

राजनीति मे नैतिकता और मूल्यों के समर्थक, गोरखपुर के पहले सांसद, राष्ट्रवादी, पत्रकारिता को राष्ट्रवाद की आत्मा मानने वाले दशरथ प्रसादी द्विवेदी ने लिखा कि "अख़बार नवीसी अथवा पत्रकार जीवन भला है या बुरा? इस प्रश्न का दो टूक उत्तर नहीं दिया जा सकता, किंतु किसी को अपना जीवन दिव्य और उपयोगी बनाना है तो यह एक पवित्र सेवा है, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं (स्वतन्त्रता संग्राम की पत्रकारिता और दशरथ प्रसाद द्विवेदी – डॉ. अर्जुन तिवारी) दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने पत्रकारिता को एक मिशन मानते हुए कार्य किया। तमाम आर्थिक कठिनाईयों को झेलते हुए भी 'स्वेदश' को बिना विज्ञापनों के लम्बे समय तक चलाया। समाचार पत्रों की आर्थिक समस्याओं के निराकरण के संबंध में लिखा था कि प्रेस एसोसिएशन को ख़ास तौर पर यह कार्य करना चाहिए कि वह हिन्दी प्रेसों और पत्रों का अधिकांश भार अपने ऊपर ले समय – कुसमय वह उनकी मदद करे। हिन्दी जनता को अख़बारों की ओर झुकाकर वह अपना कोष भरे" (स्वदेश, 30.06.1919)।

दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने पत्रकारिता के अधिकारों की लड़ाई भी ख़ूब लड़ी। ब्रिटिश सरकार के 1910 के प्रेस ऐक्ट का मुखर विरोध करने वालों में दशरथ प्रसाद द्विवेदी प्रमुख थे। प्रेस ऐक्ट का विरोध करने के लिए उन्होंने तत्कालीन समाचार पत्रों से एकजुट होने का

आग्रह किया और प्रेस एसोसएिशन के गठन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने विपरीत परिस्थितियों में हिंदी प्रेस एसोसिएशन के गठन के माध्यम से समाचार पत्रों और पत्रिकाओं को बल प्रदान किया। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा कि "हिन्दी प्रेस एसोसिएशन के संगठन में इस बात का ध्यान देना चाहिए कि आगे चलकर, वह भी अपने अधीनस्थ प्रेसों और पत्रों को ज़ोरदार बना सके।"

दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने स्वाधीनता आन्दोलन को स्वदेश के माध्यम से गति दी। गाँधी, नेहरू, तिलक के विचारों को जन–जन तक प्रसारित किया, साथ ही साहित्यिक पत्रकारिता को नया आयाम दिया। आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर इस गुमनाम नायक को याद करना ही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजंलि होगी और राष्ट्रप्रेम और सेवा की भावना को जागृत करने का सशक्त माध्यम भी।

ई-मेल : rajogkp007@gmail.com

अकीर्तित शूरवीर : अमर शहीद ठाकुर रणमत सिंह

मनोज कुमार मिश्र

सन् 1857 की क्रान्ति का प्रभाव भारत की अन्य इकाइयों की भाँति बघेलखण्ड पर भी पड़ा था। बघेलखण्ड में विद्रोह का स्वरूप स्थानीय परिस्थितियों के कारण ब्रिटिश भारत से कुछ भिन्न अवश्य था, किन्तु उनका उद्देश्य भी भारत को अँग्रेज़ों की दासता से मुक्त कराना था।

बघेलखण्ड के स्थानों, जिन पर विद्रोह का विशेष प्रभाव पड़ा उनमें रीवा, बरौंधा, डभौरा, बिलासपुर और जबलपुर के मध्यवर्ती भाग मैहर, सोहागपुर और विजयराघवगढ़ आदि प्रमुख थे। 1857 में आजादी की पहली लड़ाई में सतना ज़िले के मनकहरी ग्राम निवासी ठाकुर रणमतसिंह ने भी अँग्रेज़ों के छक्के छुड़ा दिए थे। वे महाराजा रघुराजसिंह के समकालीन थे। महाराजा इन्हें काकू कहा करते थे। उन्हें रीवा की सेना में सरदार का स्थान मिला था।

रीवा रियासत के प्रति अपनी वफ़ादारी के लिए रणमत सिंह ने अपनी सवा लाख रूपये सालाना की जागीर छोड़ दी थी। उसी रीवा राजा के संकेत पर उनके एक अधिकारी ने रणमत सिंह को स्वागत के बहाने बुलाया और पकड़कर अँग्रेज़ों के हवाले कर दिया। रीवा रियासत की एक बड़ी विशेषता है, जो पूरे भारत से अलग है। वह यह कि देश की तमाम राजनैतिक उथल–पुथल का इस रियासत पर कोई असर नहीं पड़ा। भारत की केंद्रीय सत्ता पर अँग्रेज़ रहे हों, मुग़ल रहे हों, लोदी, तुग़लक़ या गुलाम वंश रहा, किन्तु रीवा के राज परिवार ने अपनी सत्ता को

हमेशा सलामत रखा। इसके लिए भले ही नर्तकियां भेंट करनी पड़ीं, अथवा अपने ही किसी प्रियजन को पकड़ कर अँग्रेज़ों के हवाले करना पड़ा। रणमत सिंह की गिरफ़्तारी भी इसी प्रक्रिया का एक हिस्सा थी। यह बात 1857 की है। पन्ना और रीवा अलग–अलग रियासतें रही हैं, तब भी थीं, और आज भी दोनों राजघराने के वंशज मौजूद हैं। रणमत सिंह की जागीर पन्ना रियासत के अंतर्गत आती थी। रणमत सिंह मूलतः बघेल क्षत्रिय थे। इतिहास में बघेल अपने शौर्य और वफ़ादारी के लिए मशहूर रहे हैं। इसी वफ़ादारी के कारण पन्ना रियासत से रणमत सिंह के पूर्वजों को सवा लाख सालाना की कोठी जागीर में मिली थी। इसी जागीर के अंतर्गत ग्राम मनकहरी रणमत सिंह के पिता को दिया गया था। रणमत सिंह का जन्म इसी ग्राम में हुआ। पन्ना का राज परिवार बघेल नहीं था

जबकि रीवा राज परिवार बघेल था। कहते हैं, रणमत सिंह रीवा राज परिवार के साथ हमेशा रहा। इसी बीच पन्ना और रीवा रियासतों के बीच मन मुटाव हो गया। दोनों रियासतों ने युद्ध की तैयारियाँ शुरू कीं। यह घटना 1850 के आसपास की है। यह बात अलग है कि अँग्रेज़ों की मध्यस्थता के कारण युद्ध नहीं हो पाया। लेकिन युद्ध की तैयारियों के बीच रणमत सिंह को यह बात अच्छी नहीं लगी कि वे अपने ही पूर्वजों के वंशज रीवा के बघेलों के विरूद्ध हथियार उठाएँ। रणमत सिंह जागीर छोड़कर पन्ना रियासत से चले गए। पन्ना रियासत ने उनकी जागीर ज़ब्त कर ली। बाद में दोनों रियासतों के समझौते के बाद पन्ना राजा के आग्रह पर रणमत सिंह को रीवा रियासत में जगह नहीं मिली। वे अपने कुछ साथियों के साथ सागर आ गए। जहाँ वे अँग्रेज़ी सेना में लेफ़्टिनेंट हो गए। कुछ दिनों बाद उन्हें पदोन्नति देकर नौगाँव भेज दिया गया। जहाँ उन्होंने कैप्टन के रूप में पदभार सँभाल लिया। तभी 1857 का दौर शुरू हुआ।

1857 में बिहार के बाबू कुंवरसिंह और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अँग्रेज़ों के विरुद्ध भारी मारकाट मचाई। लेकिन दोनों शक्तियाँ मिल नहीं पाईं क्योंकि बघेलखण्ड में अँग्रेज़ दोनों शक्तियों को मिलने नहीं देने के लिए एड़ी चोटी का ज़ोर लगा रहे थे। महाराजा रघुराजसिंह पर भी अँग्रेज़ों की कड़ी नज़र थी। ठाकुर रणमतसिंह रीवा और पन्ना के बीच का क्षेत्र बुंदेलों से मुक्त कराने में उभरकर सामने आए। अँग्रेज़ों के विरुद्ध गुस्सा फूटा और क्रान्ति ने ज़ोर पकड़ा। क्रांति का सर्वाधिक प्रभाव बघेलखण्ड में देखा गया। कैप्टन रणमत सिंह की पलटन को आदेश मिला कि वे क्रान्तिकारी बख़्तबली और मर्दन सिंह को पकड़ने का अभियान चलाएँ। रणमत सिंह ने यह अभियान नहीं चलाया बल्कि वे दिखावे के लिए यहाँ–वहाँ डोलते रहे। यह बात अँग्रेज़ों को पता चल गई। उन्होंने रणमत सिंह और उनके साथियों को बर्ख़ास्त कर दिया और गिरफ़्तारी आदेश जारी कर दिए। अँग्रेज़ फ़ौज में रहते हुए रणमत सिंह ने लगभग 300 लोगों की एक टुकड़ी बना ली थी। बर्ख़ास्त होने के बाद यह टोली खुलकर क्रान्ति में शामिल हो गई। इलाक़ा रणमत सिंह का देखा हुआ था। लिहाज़ा उन्हें पकड़ना नामुमकिन हो गया था।

जब 1857 की क्रान्ति समाप्त हो चुकी थी, महारानी लक्ष्मीबाई शहीद हो चुकी थीं, सेना का रुख़ पूरब की तरफ़ कर दिया गया। 1858 में बांदा में एक सैन्य दल ठाकुर रणमत सिंह का पीछा करने लगा। रणमत सिंह का क्रान्ति क्षेत्र अकेला बघेलखण्ड तक नहीं रहा। उन्होंने झाँसी से जबलपुर, रायपुर, नागपुर तक धावा किया। उनके साथ सैनिक जुड़ते रहे, टूटते रहे लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी। उधर ठाकुर रणमत सिंह साहब पर 2000 रु. का इनाम घोषित किया गया। उन्होंने डभौरा के ज़मींदार रणजीत राय दीक्षित के गढ़ में शरण ली। वहाँ भी अँग्रेज़ी सेना ने हमला बोल दिया। वे विवश होकर सोहागपुर गए। वहाँ भी अँग्रेज़ों ने पीछा किया। जब ठाकुर रणमतसिंह क्योटी की गढ़ी में छिपे हुए थे, अँग्रेज़ी सेना की एक टुकड़ी ने रीवा की सेना की सहायता से उन्हें घेर लिया। वे वहाँ से भाग निकलने में सफल हो गए। रणमत सिंह के मुख्य साथी लाल श्यामशाह सिंह, धीर सिंह, पंजाब सिंह, रंजीतराय दीक्षित, सहमत अली, लोचन सिंह आदि प्रमुख थे।

अँग्रेज़ यह बात जानते थे कि रणमत सिंह और रीवा राज परिवार एक वंश के हैं। लिहाज़ा उन्होंने रीवा राजा से सीधी बात नहीं की। उनके दरबार में संपर्क निकाला। रीवा फ़ोर्स में कंपनी कमान्डेन्ट बलदेव सिंह का भाई हीरा सिंह रीवा राजा का अति विश्वास पात्र था। अँग्रेज़ों ने इसी सूत्र को पकड़ा। बलदेव सिंह के मार्फ़त हीरा सिंह से बात की गई। अँग्रेज़ों के प्रलोभन में हीरा सिंह आ गया। उसने पहले राजा से बात की। उनकी सहमति लेकर रणमत सिंह से संपर्क साधा। रणमत सिंह को बताया गया कि रीवा राजा ने अँग्रेज़ों से बात कर ली है। तुम्हारा रीवा में स्वागत होगा तथा जागीर मिलेगी। लेकिन रणमत सिंह ने नहीं माना और इधर रीवा महाराज पर लगातार अँग्रेज़ों द्वारा दबाव बढ़ता ही जा रहा था। अँग्रेज़ों ने रणमत सिंह को पकड़ने के लिए अंतिम चाल चली। रीवा के महाराजा पर दबाव डाला गया। उन्होंने पत्र लिखकर ठाकुर रणमतसिंह को बुलवाया। महाराजा के बुलाने पर वे गुप्त मार्ग से राजमहल में प्रविष्ट हुए और महाराजा से भेंट की। महाराजा से भेंट होने पर रणमत सिंह के सामने आत्मसमर्पण का विकल्प रखा।

इसके बाद जब रणमतसिंह अपने मित्र विजय शंकर नाग के घर जालपा देवी मंदिर के तहख़ाने में विश्राम कर रहे थे, संकेत पर पॉलिटिकल एजेंट को यह सूचना दी गई। रणमतसिंह गिरफ़्तार कर लिए गए। रात भर इस कोठी के आसपास तगड़ा पहरा रहा।

हालाँकि क्रान्ति के दमन के बाद वर्ष 1859 में रणमत सिंह को कुछ करने के लिए ज्यादा नहीं रह गया था, फिर भी अँग्रेज़ उन्हें पकड़कर ख़त्म करना चाहते थे। अँग्रेज़ों की मंशा केवल ग़द्दारी के कारण पूरी हो सकी, अँग्रेज़ों की वीरता के कारण नहीं। उन्हें सवेरे गिरफ़्तार करके बांदा भेज दिया गया। अँग्रेज़ों ने यह भ्रम फैलाया कि रणमत सिंह को आगरा भेज जा रहा है किंतु बांदा में 1 अगस्त 1859 को उन्हें फाँसी दे दी गई। ठाकुर रणमत सिंह के बलिदान की गाथा बघेलखण्ड, बुन्देल खण्ड के लोकगीतों में अभी भी गाई जाती है।

ई-मेल : m.mishra.bna@gmail.com

बुंदेला विद्रोह के गुमनाम नायक : मधुकर शाह बुंदेला

अनामिका सागर

मधुकर का जन्म मध्यप्रदेश में स्थित बुन्देलखण्ड अंचल के नाराहट गाँव के एक बुंदेला परिवार में हुआ था। मधुकर ने 1842 में अँग्रेज़ी हुकूमत की मनमानी के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर दिया जिससे अँग्रेज़ी हुकूमत डगमगाने लगी।

वैसे तो अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ देश की आज़ादी के लिए 1857 की क्रान्ति को प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के नाम से जाना जाता है, लेकिन जानकारों की मानें तो अँग्रेज़ों के ख़िलाफ़ पहला संगठित विद्रोह 1842 का बुंदेला विद्रोह था, जिसमें क़रीब एक साल तक स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों ने अँग्रेज़ों की नाक में दम कर दिया था और इस विद्रोह ने एक तरह से 1857 की क्रान्ति की नींव रखने का काम किया था।

बात 1836 की है जब सागर ज़िले के अँग्रेज़ी अफ़सरों ने नया क़ानून लगा कर जागीरदारों के अधिकारों को सीमित कर दिया जिससे जगीरदारों के स्वाभिमान को ठेस लगी और यहीं से शुरूआत हुई। जागीरदारों के मन में अँग्रेजों के लिए नफ़रत और विद्रोह था उस समय अधिकतर जागीरदार बुंदेला या ठाकुर थे। इस विद्रोह की आग तत्कालीन बुंदेलखण्ड इलाके में जमकर फैली और लोगों के मन में धारणा बनी कि अँग्रेज़ों की भी मुख़ालिफ़त की जा सकती है।

अँग्रेज़ी सरकार (हुकूमत) ने मधुकर के पिता राव साहब पर पुराना लगान न चुका पाने तथा डिक्री जमा नहीं कर पाने पर उनकी संपत्ति कुर्क़ करने का आदेश दिया। अँग्रेज़ी सरकार ने बहुत लोगों के साथ ऐसा ही किया जिससे विद्रोह की ज्वाला भड़कने लगी। जिससे नाराहट के राव साहब बुंदेला, गुढा के विहम जीत सिंह जू, बड़े डोगरा के भोले जू, नन्ने डोगरा के दीवान प्रताव सिंह जू आदि सम्मिलित थे।

अँग्रेज़ी शासन के विरूद्ध ये पहले ही लोग थे और इस पर अँग्रेज़ों ने एक ग़लत काम और कर दिया। होली के अवसर पर राजाओं के यहाँ बेडनी द्वारा राई नृत्य करने की प्रथा है तो 26 मार्च होली के दिन शाहगढ़ की प्रसिद्ध बेड़नी झुकमियां का राई नृत्य हो रहा था तभी अँग्रेजों का जमादार वहाँ आया और झुकमिया को ज़बरदस्ती उठा कर ले गया। जिसके कारण बुंदेला राजा बौखला उठे और दर्जनों अँग्रेज़ों सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया। इसके लिए अँग्रेज़ों ने विजय बहादुर राव साहब को अपनी गिरफ्त में ले लिया। यह सब देख राव साहेब के बेटे मधुकर ने अँग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया। इसमें लोधी तथा गौड़ू राजाओं को भी अपने साथ मिला लिया और अँग्रेज़ों को मारा, उनकी हत्या की। परन्तु एक दिन अँग्रेज़ी अफसर हेमिल्टन ने मधुकर शाह और उनके भाई गणेश को धोख़े से उनकी बहन के घर पर आधी रात को गिरफ़्तार कर लिया जब वह सो रहे थे और उन्हें जेल भेज दिया।

उन्हें सागर ज़िले की जेल में 1845 में फाँसी की सज़ा दे दी गई तथा उनके भाई गणेश जू जो उस समय केवल 19 वर्ष के थे, को काले पानी की सज़ा दे दी गई।

जिस तरह से बुंदेलखण्ड में अँग्रेज़ों को बग़ावत का सामना करना पड़ा था, तो अँग्रेज़ों ने सागर में 1842 में जेल की स्थापना की थी इसलिए वीर मधुकर शाह को गिरफ़्तार करने के बाद सागर के मौजूदा केन्द्रीय जेल जो तब ज़िला जेल थी, वहीं उन्हें सार्वजनिक रूप से 1845 में फाँसी दी गई। सागर केन्द्रीय जेल में वह फांसी घर आज भी मौजूद है और जहाँ मधुकर शाह का अंतिम संस्कार किया गया वहाँ उनकी समाधि बनाई गई जिसे जेल विभाग ने आज भी संरक्षित किया हुआ है।

ई-मेल : anamikasagar6@gmail.com

इतिहास के पन्नों में गुमनाम वीरा : झलकारी बाई

देवेन्द्र देव मिर्जापुरी

हम भारत राष्ट्र के निवासी होने में गर्व का अनुभव करते हैं, क्योंकि इस पावन भूमि को देवभूमि कहा जाता है। हमारा गौरवशाली अतीत ही हमें बलवान बनाता है। हमारी संस्कृति हमारा दर्शन है तथा विश्व में सर्वश्रेष्ठ है। पुरूषों में महायोगी कृष्ण एवं मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम जैसे चरित्र भारत राष्ट्र की पवित्र भूमि पर ही अवतरित हुए हैं।

सन् 1613 में ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में व्यापार करने की अनुमति भारत वर्ष के लिए जंजाल बन गई। अँग्रेज़ों ने भारत में अपने पैर जमाने प्रारम्भ कर दिए और भारत वर्ष की भोली–भाली जनता को आपस में भिड़वाकर सत्ता अपने हाथो में ले ली। यदि उस समय की कल्पना की जाए तो रोम–रोम सिहर उठता है। क्योंकि जब गोरी सरकार के लगातार भारत माँ पर अत्याचार बढ़ते गए तब भारत माता ने ऐसे शूरवीर एवं वीराँगनाओं को जन्म दिया जिन्होंने भारत माता की आन–बान–शान के लिए अपने प्राणों की आहुति दी।

शूरवीर एवं वीराँगनाओं की दृष्टि से भी सदैव भारत भूमि अत्यन्त ही उर्वरा रही है जिसने मंगल पाण्डे जैसे वीर सपूत को जन्म दिया, जिसने गोरी सरकार के विरुद्ध आज़ादी का बिगुल बजाया था। मंगल पाण्डे ने अकेले पड़ने पर भी अपनी जान की कोई परवाह नहीं की थी और अँग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। 8 अप्रैल 1857 को आज़ादी के अग्रदूत महान क्रान्तिकारी मंगल पाण्डे को अँग्रेज़ी सरकार द्वारा मनमाने तरीक़े से फाँसी पर लटका दिया था।

मंगल पाण्डे के बलिदान की घटना की सूचना 10 मई 1857 को मेरठ तक जा पहुँची और मेरठ में पहुँचते ही अँग्रेज़ी सत्ता के विरुद्ध भयंकर विद्रोह भड़क उठा जिसकी लपटें झाँसी तक भी आ पहुँची। अन्य रजवाड़ों की तरह झाँसी में भी राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ तेज़ी से बदलने लगीं।

वीराँगना महारानी लक्ष्मीबाई की बलिदान गाथा तो प्रायः सभी के संज्ञान में है लेकिन उनकी सहचारी–सहभागिनी, दलित–शोषित और उपेक्षित वर्ग के कोरी समाज में जन्मी, पूरन कोरी फ़ौजी की पत्नी झलकारी बाई की शौर्यगाथा उतने महत्व के साथ उतनी चर्चा में आने से वंचित ही रही, जितनी और जिस प्रकार चर्चा में आनी चाहिए थी।

भारत में आम जनता पर अँग्रेज़ों के अत्याचार दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे जिससे साथ दो–दो क्रान्तियों ने जन्म ले लिया था। एक तो सामाजिक अन्याय के विरुद्ध और दूसरी अँग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध। दोनों प्रकार की क्रान्तियों में आपस में सामंजस्य था लेकिन कहीं कहीं उनके रास्ते अलग–अलग भी थे लेकिन जनता की भागीदारी दोनों क्रान्तियों में थी। तभी जनता की अशिक्षा, ग़रीबी आदि का लाभ उठाकर ज़मींदार और पुरोहित वर्ग पटुता से इसका लाभ उठाते थे और वर्ग, धर्म और जातियों की आड़ में लोगों को गुमराह करते थे।

समूचे देश में क्रान्ति की आग सुलगने लगी और आम जनता के मन में केवल एक ही उद्देश्य था कि अँग्रेज़ों को देश से खदेड़ना और नए भारत की रचना करना। इसलिए भारत के लोग दोहरे शासन और दोहरी न्याय–व्यवस्था के विरुद्ध हो गए थे।

"स्वर विद्रोही फूट रहे थे, मन में शोले भड़के थे

गोरों के अत्यचारों से, हृदय सभी के धड़के थे"

अँग्रेज़ों के द्वारा समाज में अराजकता का माहौल पैदा कर दिया गया था। भारत का प्राचीन इतिहास साक्षी रहा है कि जब–जब किसी आततायी ने मानवता की, धर्म की हानि की है तब–तब प्रकृति ने भारत भूमि की कोख से किसी न किसी ऐसे शूरवीर को पैदा किया है जिसने चुन–चुन कर आततायी का अन्त किया हो। भारत माता को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए भारत माता की अनगिन संतानों ने अपना बलिदान दिया है। न सिर्फ़ भारत माता ने सिंहों को ही जन्म दिया, बल्कि भारत माता सिंहनियों को भी जन्म देती रही है उन्हीं में एक नाम है "झलकारी बाई"।

"झलकारी बाई" रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल थी जिसे देख कर सभी भ्रमित हो जाते थे। झाँसी की महिला फ़ौज दुर्गावाहिनी की सेनपति "झलकारी बाई" बहुत निडर और देश–प्रेम की भावना से ओत–प्रोत थी।

6 जून 1857 को झाँसी में विद्रोह भड़क उठा और झलकारी बाई के पति पूरन कोरी और भाऊ बख़्शी एवं कुछ देसी सिपाहियों ने ख़ज़ाने और शस्त्रागार पर क़ब्ज़ा कर लिया। झाँसी में भयंकर ख़ून ख़राबा हुआ। झाँसी के क़िले से तोपें भी आग उगल रही थीं। झाँसी के कई अँग्रेज़ अधिकारी मारे गए और कुछ ने भागकर अपनी जान बचाई लेकिन इसके बाद अँग्रेज़ों ने युद्ध शुरू किया और झाँसी में बहुत ख़ूनख़राबा हुआ। युद्ध का कोई अन्त दिखाई नहीं दे रहा था। पूरन फ़ौजी और भाऊ बख़्शी अँग्रेज़ों से जूझ रहे थे। झलकारी बाई को रानी लक्ष्मीबाई

की सुरक्षा की चिन्ता होने लगी कि कहीं रानी अँग्रेज़ों के हाथ न लग जाएँ और ब्रिटिश सेना अपनी विजय पताका न फहरा दे। नाज़ुक स्थिति में वीराँगना झलकारीबाई ने बड़ी सूझ–बूझ से रानी लक्ष्मीबाई को सुरक्षित स्थान पर जाने की इच्छा प्रकट की। उस वीर नारी झलकारीबाई ने योजनानुसार रानी लक्ष्मीबाई को मांडेरी फाटक से अपने वफ़ादार सैनिकों के साथ निकालना चाहा, लेकिन रानी ने इस तरह से छिपकर जाना उचित नहीं माना, लेकिन झाँसी की स्वतन्त्रता के लिए उनका सुरक्षित होना आवश्यक था। झलकारी बाई में वीरता का सैलाब उमड़ रहा था और वह अपने पति पूरन के साथ डटी रही।

झलकारीबाई ने युद्ध की बाग़डोर अपने हाथ में रख कर रानी लक्ष्मीबाई को क़िले से निकाल दिया और रानी के वेश में स्वयं झलकारी युद्ध करने लगी। अँग्रेज़ी सेना समझ भी नहीं सकी थी कि युद्ध करने वाली रानी लक्ष्मीबाई नहीं है। युद्ध में झलकारी बाई अपने पति पूरन फ़ौजी के शहीद होने की ख़बर से रंचमात्र भी विचलित नहीं हुई थी, वह बड़ा ही हृदय विदारक दृश्य था। लेकिन झलकारी बाई सिंहनी की तरह अँग्रेज़ों का संहार करती रही। इस युद्ध में कितने वीर शहीद हुए, सबको इतिहास में स्थान नहीं मिल सका। जब रानी क़िले से निकल चुकी थी और झलकारी बाई युद्ध कर रही थी तो उसकी अपनी सेना के सिपाही दुलहाजू ने ग़द्दारी की और क़िले का ओरछा द्वार खोल दिया जिससे अँग्रेज़ों की सेना क़िले के भीतर घुस गयी। दुलहाजू ने झलकारी बाई को ग़द्दारी की दृष्टि से देखा तो झलकारीबाई ने भी अपनी आग उग़लती हुई आँखों से देखा तो वह घबरा गया और आवाज़ उसकी हलक़ में ही अटक कर निकली। उसने ह्यूरोज़ से कहा, सरकार यह रानी लक्ष्मीबाई नहीं है, यह तो झलकारी बाई युद्ध कर रही है। तब ह्यूरोज़ ने कहा कौन झलकारी? तब दुल्हाजू ने कहा पूरन तोपची की पत्नी, रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल। अब झलकारी बाई के पास मात्र एक ही रास्ता था कि गोरों का ध्यान रानी से हटाया जाए और रानी लक्ष्मीबाई को बचाया जाए।

तभी बड़ी वीरता से झलकारी बाई अपने घोड़े की लगाम को खींच कर गोरों के सामने आ डटी। गोरों के हाथ पाँव फूल गए और बोले, कौन हो तुम? झलकारी बाई ने निडरता से उत्तर दिया, 'मैं रानी' उसी ओर से ह्यूरोज़ रानी को पकड़ना चाहता था, उसने अपने सैनिकों के साथ झलकारी बाई को एक घेरे में घेर लिया। लेकिन झलकारी उनके बीच निडर सिंहनी की तरह डटी रही। लेकिन गोरे जान गए कि यह रानी नहीं झलकारी बाई है, तब अँग्रेज़ी सेना में रानी लक्ष्मीबाई का भय समाप्त हो गया और घेरकर झलकारी बाई को पकड़ने का प्रयास किया, लेकिन वह अँग्रेज़ों से लोहा लेती हुई वीरगति को प्राप्त हो गई। 1857 के स्वतन्त्रता समर में झाँसी की महानायिका झलकारीबाई का नाम इतिहास के पन्नों पर उस तरह विराजमान नहीं हुआ जिसकी वह वास्तव में हक़दार थी।

आज हम जिस भारत में स्वच्छन्द विचरण करते हैं तो हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि यह स्वतन्त्रता जिन वीरों के बलिदान से रक्तरंजित होकर हमें प्राप्त हुई है उनकी बहुत लम्बी बलिदानों की गाथा है जो अपने लिए नहीं, अपना सब कुछ हमारे लिए बलिदान कर गए। भारत माता की स्वतन्त्रता के क्रान्ति पथिकों ने हँसते–हँसते फाँसी के फन्दों को अपने गले में डाल लिया। यह प्रेरणा देश पर बलिदान होने वाले क्रान्ति–वीरों ने गीता से प्राप्त की।

मैं भारत माता की कोख से जन्मे सभी वीर बाँकुरों एवं वीराँगना क्रान्तिकारियों को कोटिशः नमन करता हूँ जो जाने–अनजाने इतिहास की दृष्टि से ओझल रह गए हैं लेकिन वे आज़ादी की लड़ाई में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर हमारे रोम–रोम में बसे हुए हैं।

ई-मेल : devendradev.bsr@gmail.com

आज़ादी के गुमनाम नायकों का बलिदान

सुमन वैद्य

आज़ादी के परवानों ने दिया सर्वोच्च बलिदान,
रखा अपने देश का मान,
हमें गुलामी की ज़ंजीरों से बचाया,
आज़ादी के सही अर्थ का एहसास कराया,
अपने लहू से भारतवर्ष बनाया,
हमें गुमनामी से स्वतन्त्र कराया,
पर हमने उनको ही गुमनाम बनाया।
गिने–चुने नामों को लेकर,
इतिहास आज़ादी का रचाया गया।
पूरब से लेकर पश्चिम तक,
उत्तर से लेकर दक्षिण तक,
1857 से लेकर 1947 तक,
पूरा देश था नहाया बलिदानों से,

1857 से पहले
डेढ़ सौ सालों का इतिहास,
क्रूरता, छल, और चापलूसी से भरा हुआ,
कुछ लम्पटता, कुछ कामुकता से सजा हुआ,
अपने इन्हीं शस्त्रों से
अँग्रेज़ों ने छीनी गद्दी,
बढ़ाया अपना राज,
नबावों, राजाओं को दिया लालच,
फैलाया अपना काज।
1756 को, हुआ प्लासी का युद्ध,
फिर 1764 को हुआ बक्सर का युद्ध
मैसूर में हुईं चार लड़ाईयाँ,
फिर ऐंग्लो – मराठा युद्ध

छल–कपट से अँग्रेज़ों ने,
किया देश अशुद्ध।
फूट डालो, राज करो
नीति अपनाई गई
देश का मान, गिराया गया,
आबरू लुटती गई,
सहनशीलता टूटती गई,
धर्म के नाम पर, भारतवर्ष को रुलाया गया।
टूटा विश्वास, टूटी शान्ति,
वीर सपूतों ने उठा ली,
अंग्रेजों के खिलाफ,
1857 की ज्वाला क्रान्ति,
मेरठ से उठी,
1857 को उठी,
और ख़ूब उठी,
ऐसी उठी,
कि
1947 तक उठी रही,
ज्वाला धधकती रही,
देश भर में फैलती रही,
देश एक हो रहा था,
अँग्रेज़ बेचैन हो रहा था,
अब उसकी लड़ाई,
किसी
एक नवाब या राजा से नहीं थी,
लाखों नायक थे पर उसकी फ़ौज वही थी।
देश की आन बचाने को तैयार,
आज़ादी का बिगुल बजाने को तैयार,
आनी जान गँवाने को तैयार,
देश का झंडा फहराने को तैयार,
जवान थे, किसान थे,
आदिवासी, कामगार थे
लेखक थे, वकील थे,
पिता थे, और पुत्र थे,
थीं पुत्री और माताएँ भी
कलाकार भी, नौजवान भी
बूढ़े, बूढ़ी सब थे
परिवार थे, क़स्बे थे,
थे गाँव और देहात भी,
सबने देश का साथ दिया,
हाथों में परचम थाम लिया,
बलिदान का पट्टा सर पर बाँध लिया।
निकल पड़े घरों से जैसे,
आज़ादी का पर्व मनाने
असम से गुजरात तक
कश्मीर से कन्याकुमारी तक
सिर्फ़ एक ही मक़सद, एक ही नारा,
आज़ाद होगा देश हमारा।
सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्ताँ हमारा।
गोलियाँ खाईं, चढ़े फाँसी,
क्रूरता का, हर ज़ुल्म सहा,
अपनी आबरू की परवाह न की,
देश की आबरू को, अपना रक्त बहा।
ज़ुल्म न करने का,
आज़ादी से सबको रहने का,
होता रहा बार–बार आग्रह।
पर निर्दय और क्रूर फिरंगी बहरों को,
कहाँ समझ आता आग्रह।

हुआ आरम्भ 1917 में,
नील की खेती के विरोध में
किसानों का चंपारण सत्याग्रह
फिरंगियों का डर बढ़ता गया,
देश के परवानों पर
आज़ादी का रंग चढ़ता गया।
अँग्रेज़ों का
लाठी और गोलियों का संग बढ़ता गया।
ख़ूब रक्त बहा
1919 के जलियाँवाला बाग़ में,
हज़ारों बलिदान हुए
इस एक तरफ़ा नरसंहार में।
खाईं गोलियाँ छाती पर
सब थे आज़ादी के एक राग में।
1920 का असहयोग आंदोलन हो
1922 का चौरी–चौरा कांड हो,
1930 का शस्त्रगार कांड हो,
चटगाँव विद्रोह या हो डाँडी मार्च,
हो, चाहे
1942 का भारत छोड़ो आंदोलन,
1943 की आज़ाद हिंद फ़ौज हो,
1946 की रॉयल नेवी की स्ट्राइक हो।
सबकी दिशा एक,
सबका रास्ता एक,
सबका काम एक,
सबकी सोच एक
आज़ाद भारत देश हमारा।
1947 को आज़ादी का परचम लहराया,
देश के हर दिल में तिरंगा फहराया।
नहीं था किसी एक का बलिदान,
केवल गिने–चुने,
इतिहास में वर्णित,
अकेले नायकों का भी न था यह बलिदान
हज़ारों, लाखों ने आज़ादी के लिए,
दे दिया था बलिदान,
उम्मीद है,
आज़ादी के इन गुमनाम
नायकों के,
बलिदान को याद किया जाएगा,
लहू जिनका बहा है,
इतिहास उनकी गाथा भी गाएगा।
भारत वर्ष के कण–कण को आज़ाद करने में,
सर्वोच्च बलिदानियों को खोज–खोजकर सामने लाएगा।
सलाम है आज़ादी के बलिदानी नायकों को,
जो हँसते–हँसते दुनिया से,
अपनों से दूर चले गए,
ख़ुद गुमनामी में खोकर,
साथियों को रौशन कर गए।

ई-मेल : suman.nsd@gmail.com

अकीर्तित वीराँगना : मातंगिनी हाजरा

सौमिता कुंडू

चलते चलो नौजवानो
वीर गाथाएँ बुनते चलो
बुलंद आवाज़ सुनते चलो
करोड़ों की है आबादी
मिलकर छीनी थी आज़ादी
इस देश की
वीर शहीद थे हुए कुर्बान
ख़ून देके बचाई शान
ऐसी थी एक वीर नारी
कहते हैं जिसको 'गाँधी बूढ़ी'
इस देश की।
बारह वर्ष में बाल विवाह
हुई विधवा, थी जब अठारह
समर्पण किया तबसे ख़ुद को
आन की ख़ातिर
इस देश की।
सत्याग्रह, भारत छोड़ो
सभी का भाग बनी थी वो
जब बारी आई तमलुक की
अँग्रेज़ों से छिनने की
सब से आगे रही थी वो
'गाँधी बूढ़ी'
इस देश की।
पाँच हज़ार महिलाएँ
बच्चे, बूढ़े साथ लिए
साल बहत्तर की आयु में
ज्वाला भरी थी हिंद वायु में
लिए हाथ में वो तिरंगा
चली हमारी वो वीराँगना
इस देश की।
बढ़ती रही, और फिर न रुकी
चीर के गोली अँग्रेज़ों की
तिरंगा अपने हाथ लिए
वीर गति को प्राप्त हुई।
नमन तुम्हे,
हे वीराँगना
मातंगिनी हाजरा
इस देश की।

ई-मेल : soumi.rgp@gmail.com

गुमनाम शहीद : प्रफुल्ल चंद चाकी

राजपाल यादव

आओ मेरे साथ साथियो
दिल पर रख लो हाथ साथियो

मातृभूमि पर शहीद हुए जो
उनको कर लो याद साथियो

ऐसे एक गुमनाम वीर की
गाथा सुल लो यार साथियो

देश की ख़ातिर जिसने अपने
प्राण दिए थे वार साथियो

साधारण बंगाली घर में
जन्मा राजकुमार साथियो

प्रफुल्ल चंद चाकी कहलाया
मात–पिता का हार साथियो

बचपन से ही देशप्रेम से
उसे रहा सरोकार साथियो

विवेकानंद के भरे हुए थे
उसमें सकल विचार साथियो

नस–नस में उसके बहती थी
वतन परस्त बयार साथियो

छोड़ स्कूली शिक्षा–दीक्षा
उठा लिए हथियार साथियो

अल्पायु में देश की ख़ातिर
छोड़ दिया घर–बार साथियो

कलकत्ता में किंग्सफ़ोर्ड था
मजिस्ट्रेट ख़ूँख़ार साथियो

करता था अपनी मनमानी
और वो अत्याचार साथियो

चाकी उससे जा टकराया
लेने को प्रतिकार साथियो

खुदीराम संग बम से कर दिया
अन्यायी पर बार साथियो

किंग्सफ़ोर्ड बच निकला किंतु
मरी फ़िरंगी नार साथियो

घिरा देख ख़ुद को गोरों से
ख़ुद ली गोली मार साथियो

गोरों के वो हाथ न आया
ना ही मानी हार साथियो

ऐसा था प्रफुल्ल चंद चाकी
स्वाभिमानी ख़ुद्दार साथियो

बीस वर्ष की आयु में ही
देश पर हुआ निसार साथियो

ऐसे अमर शहीद प्रफुल्ल को
हमारा नमन् शत बार साथियो

ई-मेल : rajpalyadavcil@gmail.com

आज़ादी के गुमनाम नायक

योगेश भट्ट

मैंने देखा है प्यारा भारत, सभी रंग मुझे भाए
अनेकता में भी एकता का, मार्ग सबको दिखलाए
अष्टाविंशति मोतियाँ देखो, भारत सुनहरा धागा
अनेकानेक हैं लिपियाँ पर, एक हृदय की भाषा
तरह तरह के पर्व यहाँ पर मिलकर सभी मनाएँ
मैंने देखा है प्यारा भारत, सभी रंग मुझे भाए
अटल हिमालय की चोटी पर, सूर्य शीश झुकाता
नदियों के संगम को देखो, मन गद् गद् हो जाता
मिलकर रहने की ताक़त को हमको ये समझाता
गंगा जमुना सरस्वती का, संगम ये सिखलाए
मैंने देखा है प्यारा भारत, सभी रंग मुझे भाए

त्याग बड़ा था आज़ादी में, बीता कल बतलाए
वीर चंद्र सिंह गढ़वाली हो या पंजाब की अरुणा
बिहार की देवी तारा रानी और मद्रास की कमला
दुर्गाबाई, बिरसा मुंडा जैसे नायक आए
कई असंख्य वीरों ने भी अपने हाथ बढ़ाए
भूल न जाना उन नामों को,
वीराँगनाओं के बलिदानों को,
काल में ना वो गुम हो जाएँ,
स्वतन्त्रता की अग्नि में जिसने प्राण गँवाए
मैंने देखा है प्यारा भारत, सभी रंग मुझे भाए

ई-मेल : somisimple@gmail.com

स्वभूमि जयघोष

राम अवतार सिंह मीणा

आज तिरंगा लहराता है अपनी पूरी शान से।
हमें मिली आज़ादी वीर शहीदों के बलिदान से।
आज़ादी के लिए हमारी लंबी चली लड़ाई थी।
लाखों लोगों ने प्राणों से क़ीमत बड़ी चुकाई थी।
व्यापारी बनकर आए और छल से हम पर राज किया।
हमको आपस में लड़वाने की नीति वह अपनाई थी।
हमने अपना गौरव पाया अपने स्वभिमान से।
हमें मिली आज़ादी वीर शहीदों के बलिदान से।

लगीं गूँजने दसों दिशाएँ वीरों के यश गान से।
हमें मिली आज़ादी वीर शहीदों के बलिदान से।
हमें हमारी मातृभूमि से इतना मिला दुलार है।
उसके आँचल की छाया में छोटा सा ये संसार है।
हम न किसी हिंसा के आगे अपना शीश झुकाएँगे।
सच पूछो तो पूरा विश्व हमारा ही परिवार है।
विश्व शांति की चली हवाएँ अपने हिंदुस्तान से।
हमें मिली आज़ादी वीर शहीदों के बलिदान से।

ई-मेल : meena.ramavtar1@gmail.com

शौर्यवान अकीर्तित वंशजा

कविता मिश्रा

अंबर छूता अपना तिरंगा
देश की शान बढ़ाने को
हम हिन्दुस्तानी डटे रहेंगे
इसका स्वाभिमान बचाने को
रानी दुर्गावती सी वीरा
ने जब उद्घोष उठाया था
अपने हाथों बलिदानी बनकर
दुश्मन के सिर को झुकाया था
युद्धकला में निपुण थी वो
जिसने हौसलों को पाया था
मुग़ली सेना को धूल चटाकर
अपना लोहा मनवाया था

'बलिदान दिवस' का परचम बनकर
नारी शक्ति का बिगुल बजाया था
जब सत्तावन की छिड़ी लड़ाई
'महक परी' फिर सामने आई
जिसने अपनी जान लड़ाकर
मातृभूमि की शान बचाई
आओ मिलकर याद करें
उनके अद्भुत बलिदानों को
हँस कर जो न्यौछावर हो गईं
करें नमन उन वीराओं को

ई-मेल : 20kavita@gmail.com

वीर जाँबाज़ों को नमन

पीयूष श्रीवास्तव

ऐ भारत देश के लोगों
सुनो एक महान गाथा शान की।
जब वीरों ने बलिदान दिया,
और रखा मान देश की आन का
देश की मिट्टी में मैं जी लूँ
देश की ख़ातिर मैं लड़ जाऊँ
देश का गौरव झुकने न दूँ
दुश्मन को दिखाऊँ
क़ीमत बलिदान की

ए भारत देश के लोगो
सुनो एक महान गाथा शान की।
जहाँ जन्म लिया वीरों ने
और लिखी कहानी देश के राष्ट्रगान की
जहाँ का नारा जग में गूँजा
ये बात है जय जवान जय किसान की
जिस देश के लोगों के मन में
बसते हैं भगवान राम और माता जानकी
ऐ भारत देश के लोगो
सुनो एक महान गाथा शान की।

ई-मेल : piyush.srivastava571@gmail.com

गुमनाम शूरवीरों की धुंधलाती स्मृतियाँ

लोकेश कुमार

आओ सुनाएँ गाथा उनकी
क्रान्ति के जो वीर हुए
इतिहास कथा के पन्नों पर
छपे नहीं
पर साहसी शूरवीर हुए
जिन्होंने देश की आज़ादी की
लड़ी अनगिन लड़ाई थी
चमक सका ना तारा उनका
पर साथ उनकी परछाई थी
नेहरू, गाँधी आज़ाद, भगत
सब याद रहे बलिदानों में
बापट, त्रिलोक और लक्ष्मी सहगल
उनको भी गिन लो राहों में

मर्दानी झाँसी की रानी
संग्रामी अरुणा आसफ़ अली
किया नमन हर युग ने उनको
जब भी वीरों की बात चली
भीकाजी और प्रीति लता ने
जब देश की ख़ातिर त्यागा सब
आज़ादी के पदचिन्हों पर
उनको हमने सराहा कब
सर्वस्व समर्पण करने वाले
उस युग के नर–नारी थे
प्राण न्यौछावर क्षण में करके
उनके बलिदान भी सब पर भारी थे

ई-मेल : likesingh3547@gmail.com

शुभकामनाएं

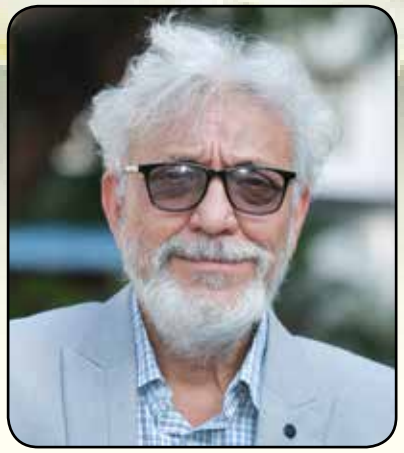

प्रो. अब्दुल लतीफ़ खटाना

प्रो. अब्दुल लतीफ़ खटानाजो रा.ना.वि. के पूर्व स्नातक भी रहे हैं, दिनाँक 24 अगस्त, 1999 को कार्यालय में लेक्चरर के पद पर नियुक्त हुए। वे प्रोफ़ेसर के पद पर रहते हुए दिनाँक 31 जनवरी, 2022 को सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्जवल भविष्य के लिए राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।

प्रो. दिनेश खन्ना

प्रो. दिनेश खन्ना जो रा.ना.वि. के पूर्व स्नातक भी रहे हैं, दिनाँक 18 अगस्त, 2003 को कार्यालय में एसोसिएट प्रोफ़ेसर के पद पर नियुक्त हुए। वे कार्यकारी निदेशक के पद पर रहते हुए दिनाँक 28 फरवरी, 2022 को सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्जवल भविष्य के लिए राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनएँ।

श्रद्धाजंलि

श्री मसूद क़ादिर

स्व. श्री मसूद क़ादिर, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व स्नातक रहे हैं। उन्होंने वर्ष 2017–20 के शैक्षणिक सत्र में रा.ना.वि. से नाट्य कला की उपाधि प्राप्त की। दिनाँक 3 अक्तूबर, 2021 को उनका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, उन्हें श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

श्री गोविन्द सिंह

स्व. श्री गोविन्द सिंह, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में दिनाँक 1 जनवरी, 1980 को चौकीदार के पद पर नियुक्त हुए। सुरक्षा पर्यवेक्षक के पद से सेवानिवृत्त होने के उपरांत दिनाँक 5 नवंबर, 2021 को उनका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, उन्हें श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

श्री लानुअकुम अओ

स्व. श्री लानुकुम, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व स्नातक रहे हैं। उन्होंने वर्ष 2014–17 के शैक्षणिक सत्र में रा.ना.वि. से नाट्य कला की उपाधि प्राप्त की। दिनाँक 4 दिसंबर, 2021 को उनका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, उन्हें श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

श्री ओम प्रकाश

स्व. श्री ओम प्रकाश, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में दिनांक 15 जून, 1988 को तबला वादक के पद पर नियुक्त हुए। उनके सेवानिवृत्त होने के उपरांत दिनाँक 8 फरवरी, 2022 को उनका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, उन्हें श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

श्रद्धाजंलि

श्री के. एस. राजेन्द्रन

स्व. श्री के. एस. राजेन्द्रन जो रा.ना.वि. के पूर्व स्नातक भी रहे हैं, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में दिनांक 22 फरवरी, 1996 को एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त होने के उपरांत दिनाँक 14 फरवरी, 2022 को उनका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, उन्हें श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

श्री सुरेन्द्र दत्त कौशिक

स्व. श्री सुरेन्द्र दत्त कौशिक, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व स्नातक रहे हैं। उन्होंने वर्ष 1961–64 के शैक्षणिक सत्र में रानावि से नाट्य कला की उपाधि प्राप्त की। दिनाँक 15 फरवरी, 2022 को उनका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, उन्हें श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

श्री अफ़सर हुसैन

स्व. श्री अफ़सर हुसैन, राष्ट्रीय नाट्य के पूर्व स्नातक रहे हैं। उन्होंने वर्ष 1981–84 के शैक्षणिक सत्र में रा.ना.वि. से नाट्य कला की उपाधि प्राप्त की। दिनाँक 27 फरवरी, 2022 को उनका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, उन्हें श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

श्री कपिल आहूजा

स्व. श्री कपिल अहूजा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में सितंबर, 2011 में परिचर के पद पर नियुक्त हुए। मार्च, 2022 में उनका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करता है, उन्हें श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की गतिविधियाँ

रंगमंडल

सुश्री रीता गांगुली के निर्देशन में रंगमंडल के कलाकारो द्वारा प्रदर्शित 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' नामक नाटक के दृश्य

छात्र प्रस्तुति

श्री अरूण कुमार मलिक के निर्देशन में द्वितीय वर्ष के छात्रों द्वारा प्रदर्शित 'आंटियों का तहख़ाना' नामक नाटक के दृश्य

श्री आसिफ अली हैदर के निर्देशन में द्वितीय वर्ष के छात्रों द्वारा प्रदर्शित 'गगन लाजले' नामक नाटक के दृश्य

छात्र प्रस्तुति

सलीम आरीफ़ के निर्देशन में तृतीय वर्ष के छात्रों द्वारा प्रदर्शित 'दिल–ए–नादान' नामक नाटक के दृश्य

श्री संदीप भट्टाचार्य के निर्देशन में तृतीय वर्ष के छात्रों द्वारा प्रदर्शित 'राइजिंग द डैड' नामक नाटक के दृश्य

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की गतिविधियाँ

गतिविधियां

आज़ादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में रानावि में आयोजित देशभक्ति गीत एवं लोरी लेखन कार्यशाला का दृश्य

आज़ादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में रानावि में आयोजित देशभक्ति गीत एवं लोरी लेखन प्रतियोगिता हेतु आमंत्रित कवि द्वारा काव्य पाठ

आज़ादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में रानावि द्वारा आयोजित देशभक्ति गीत एवं लोरी लेखन पर प्रदर्शित नुक्कड़ नाटक का दृश्य

आज़ादी के अमृत महोत्सव पर रानावि द्वारा इ.गां.रा.क. के. (आई.जी.एन.सी.ए.) में आयोजित देशभक्ति गीत एवं लोरी लेखन कार्यशाला का दृश्य

आज़ादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में संस्कार रंगटोली द्वारा गुमनाम सितारे नामक प्रस्तुति के दृश्य

रा.ना.वि. के केन्द्रों की गतिविधियाँ

बेंगलुरु केन्द्र

अभिनय कक्षा के दृश्य

आरम्भिक रंगमंच कक्षा के दृश्य।

विदिषा प्रहना प्रस्तुति के दृश्य।

रा.ना.वि. के केन्द्रों की गतिविधियाँ

सिक्किम

कालो सुनाखरी प्रस्तुति के दृश्य।

'सफ़ेद लकीर' प्रस्तुति का एक दृश्य।

सूरजमुखी एवं 'हेमलेट' प्रस्तुति का एक दृश्य।

हमी नाइ आफई आफ प्रस्तुति के दृश्य।

रा.ना.वि. के केन्द्रों की गतिविधियाँ

त्रिपुरा केन्द्र

दैहिक अभिनय की कक्षा का एक दृश्य।

नृत्य नाटिका की कक्षा का एक दृश्य।

रूपसज्जा की कक्षा का एक दृश्य।

मुखौटा बनाने की कक्षा का एक दृश्य।

वेश–भूषा परिकल्पना की कक्षा का एक दृश्य।

नाट्य आलेख पठन कक्षा का एक दृश्य।

रा.ना.वि. के केन्द्रों की गतिविधियाँ

वाराणसी केन्द्र

चित्रपट रामायण के दृश्य।

चित्रपट रामायण के दृश्य।

नौटंकी के दृश्य।

राजभाषा गतिविधियाँ

संसदीय राजभाषा समिति द्वारा निरीक्षण : संसदीय राजभाषा समिति की पहली उस समिति द्वारा दिनांक 2 नवंबर, 2021 को विद्यालय द्वारा किए जा रहे कार्यों का निरीक्षण किया गया। इस निरीक्षण को सफलतापूर्वक निष्पादित करने में विद्यालय पूर्ण रूप से संलग्न रहा। संसदीय राजभाषा समिति के सदस्यों ने राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के निर्देश दिए। इसके अतिरिक्त समिति के उपस्थित माननीय संसद सदस्यों ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा किए जा रहे कार्यक्रमों/गतिविधियों की सराहना करते हुए कहा कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय अपने नाटकों के मंचन के ज़रिए भाषा और संस्कृति को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रसारित करने की अहम भूमिका निभा रहा है।

राजभाषा गतिविधियाँ

मार्च–2022

मार्च के महीने में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा 'हिंदी का तकनीकी विकास–हिन्दी ई–टूल्स के साथ' विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में श्री केवल कृष्ण, पूर्व तकनीकी निदेशक, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय को विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित किया गया।

श्री केवल कृष्ण ने ई–टूल्स जैसे मंत्र राजभाषा, हिंदी स्पीच से हिंदी टेक्स्ट के लिए श्रुतलेखन–राजभाषा, एवं अनुवाद कंठस्थ टूल्स जैसे उपयोगी टूल्स के संबंध में प्रतिभागियों को व्यावहारिक रूप से जानकारी दी। प्रतिभागीगण ई–टूल्स के विषय में उपयोगी जानकारी को प्राप्त कर अपने कार्यालयी कार्य में इनका प्रयोग कर सकें, के उद्देश्य से इस कार्यशाला का आयोजन किया गया।